आजकल

नवम्बर—दिसम्बर, १९४७



नीहारिका

चित्रकार : सुशील सरकार

मूल्य छः आना



काश्मीर के गौरव—पण्डित नेहरू और शेख अब्दुल्ला

संख्या ७-८—वर्ष ३ ★ ★ आजकल ★ ★ नवम्बर–दिसम्बर, १९४७
वार्षिक मूल्य ४॥) एक प्रति ।=)

इस अंक में

★ ★ ★

सम्पादक—अनन्त मराल शास्त्री, उपसम्पादक—केशव गोपाल निगम, ओम्प्रकाश वैश्य, शम्भुनाथ 'शेष'
चित्रकार—एस. मिलर, महादेव शर्मा

संयुक्त प्रकाशनालय, पोस्ट बॉक्स नं० १९९, दिल्ली से प्रकाशित और युनाइटेड प्रेस, दिल्ली में मुद्रित
HINDI AJKAL NO. 7—8, Vol 3. NOVEMBER—DECEMBER, 1947.

★ ★ ★

निवेदन

दिल्ली की प्रतिकूल परिस्थिति से विवश होकर सितम्बर-अक्टूबर का अंक प्रकाशित करने के बाद हमें यह आशा हो गई थी कि नवम्बर से हम हिन्दी आजकल का अंक अपने पाठकों के पास पहले के समान ही ठीक समय पर पहुँचा सकेंगे किन्तु हमारी यह आशा पूर्ण न हो सकी। हमें अपना प्रेस एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान में ले जाना पड़ा और इस दुष्कर कार्य में अनुमान से कहीं अधिक समय लग गया। प्रेस के अभाव में हिन्दी 'आजकल' की छपाई नहीं हो सकती थी अतः हमें नवम्बर और दिसम्बर के अंकों को भी सम्मिलित रूप में प्रकाशित करने के लिये विवश होना पड़ा है।

इस विशेष परिस्थिति से जहाँ हमारे पाठकों को इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी है वहीं इससे एक लाभ भी हुआ है हमारा प्रेस अब ऐसी अवस्था में हो गया है कि हम आगे निश्चित रूप से अपने पाठकों की सेवा और भी अच्छे ढंग से कर सकेंगे।

हमारे पाठकों ने 'आजकल' को जिस प्रकार अपनाया है उससे हमारा उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया है और हमें आशा है कि निकट भविष्य में ही हम 'आजकल' को मासिक के स्थान में एक समुन्नत और सुसज्जित पाक्षिक के रूप में निकाल सकेंगे।

—सम्पादक

ललकार

आरसी प्रसाद सिंह

फिर से, नये सिरे से
दुनिया नयी बना ले!

आती अगर नहीं यह
दुनिया पसन्द तुझको;
फिर से, नये सिरे से
दुनिया नयी बना ले!

[१]

लगता कि घिस गयी हैं
बातें सभी पुरानी;
यदि जिन्दगी रुकी है,
यदि बन्द है रवानी!
चट्टान बन किसी का
अस्तित्व रोकता है;
कोई अगर कदम को
पीछे घसीटता है!
अधिकार पूर्ण तेरा,
उसको अभी मिटा दे!
फिर से, नये सिरे से
दुनिया नयी बना ले!

[२]

तू चाहता जिसे, वह
तुझको अवश्य पाना;
दुख के कठिन भँवर में
नीयत न डगमगाना;
अनुकूल यदि नहीं है
वातावरण जगत् का;
तो, तोड़ दे नियति-गति;
दुर्वाद सत्-असत् का!
कर चूर बन्धनों को,
तूफान तू उठा दे!
फिर से, नये सिरे से
दुनिया नयी बना ले!

[३]

अरमान मिट रहे हों
तेरे अगर सुनहले!
हो जा वहीं, उसी पर
तू खड्गहस्त पहले!
हस्ती अगर न तेरी,
कुछ भी न तो कहीं है!
फिर क्या रहा जमाना,
तू ही अगर नहीं है?
तत्क्षण प्रलय बुला ले,
हलचल प्रबल मचा दे!
फिर से, नये सिरे से
दुनिया नयी बना ले!

[४]

तू मुक्ति माँगता क्या?
तू शान्ति चाहता क्या?
निश्चेष्ट बैठकर तू
सुख को सराहता क्या?
पौरुष पुकारता है,
दण्डायमान हो जा!
कर्त्तव्य की लहर में
बह जा सुदूर खो जा!
ललकारती जवानी,
सौभाग्य को जगा दे!
फिर से, नये सिरे से
दुनिया नयी बना ले!

★



शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम

गुरुदयाल मल्लिक

आज के भारतवर्ष के समस्त आदर्श, आशा और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले दो नाम हमें अनायास ही याद आते हैं - शांतिनिकेतन और सेवाग्राम। इन दोनों पुण्य तीर्थों का जन्म पश्चिम से आई हुई उन्नीसवीं सदी की तीन प्रधान धाराओं के प्रतिवाद के रूप में हुआ था: व्यक्तिवाद व्यवसायवाद और साम्राज्यवाद। देश के शासन और शिक्षा के क्षेत्र में इन तीनों धाराओं ने जो असर पैदा किए थे उक्त दोनों संस्थाएँ उनका जीवित प्रत्याख्यान हैं।

मिनर्वा देवी के समान शांतिनिकेतन का आविर्भाव भी कवि के मस्तिष्क से हुआ था। जिस दिन पहली बार कविगुरु रवीन्द्रनाथ शाल के समुच्च वृक्षों की छाया में शिशुओं के खेल के साथी और धरती के लाल संथालों के मंगलाकांक्षी बनकर बैठे, उसी दिन तत्कालीन शिक्षा क्षेत्र की मानों ज्वलंत आलोचना हो गई। उनकी शिक्षा-पद्धति का मूल मंत्र था—संहति, समन्वय।

दूसरी ओर सेवाग्राम (अथवा उसके पूर्ववर्ती दक्षिण अफ्रीका के फ़ीनिक्स या गुजरात के साबरमती) आश्रम की रचना जिस शिल्पी के हाथों ने की थी वह श्रम को गहरे विश्वास के साथ मानव जीवन की नींव मानता है और जानता है कि मेहनत और मशक्कत इंसान की ज़िन्दगी के वे तत्व हैं जो उसे गांभीर्य और गरिमा प्रदान करते हैं।

इधर कवि को जीवन-मात्र के अंतराल में रहने वाली एकता से साक्षात्कार था और इसी लिये आधुनिकता के साथ सामंजस्य करके उन्होंने तपोवन की सृष्टि की जहाँ इस मूलभूत एकता के विकास में बाधा पड़ी, वहाँ कवि ने स्वाध्याय, स्वार्थत्याग, सेवा या संगीत की साधना से उसे पूरा किया।

उधर रूपक की भाषा में गाँधी जी को हम एक व्यावहारिक दार्शनिक हरवाहा कह सकते हैं। 'एक क़दम भी मैं बढ़ लूँ तो यही बहुत है' उनके जीवन का मूलमंत्र है। उन्होंने इसी मंत्र को अपने जीवन के केन्द्र में दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित करके जीवन के वृत्त को अनंत तक खींच दिया है। इससे वे उस जगह तक पहुँच सके हैं जहाँ सब की पहुँच नहीं और फिर भी उनकी जीवनधारा सबके हृदयकूलों को छूकर हरा-भरा करती, स्निग्ध करती हुई बहती है।

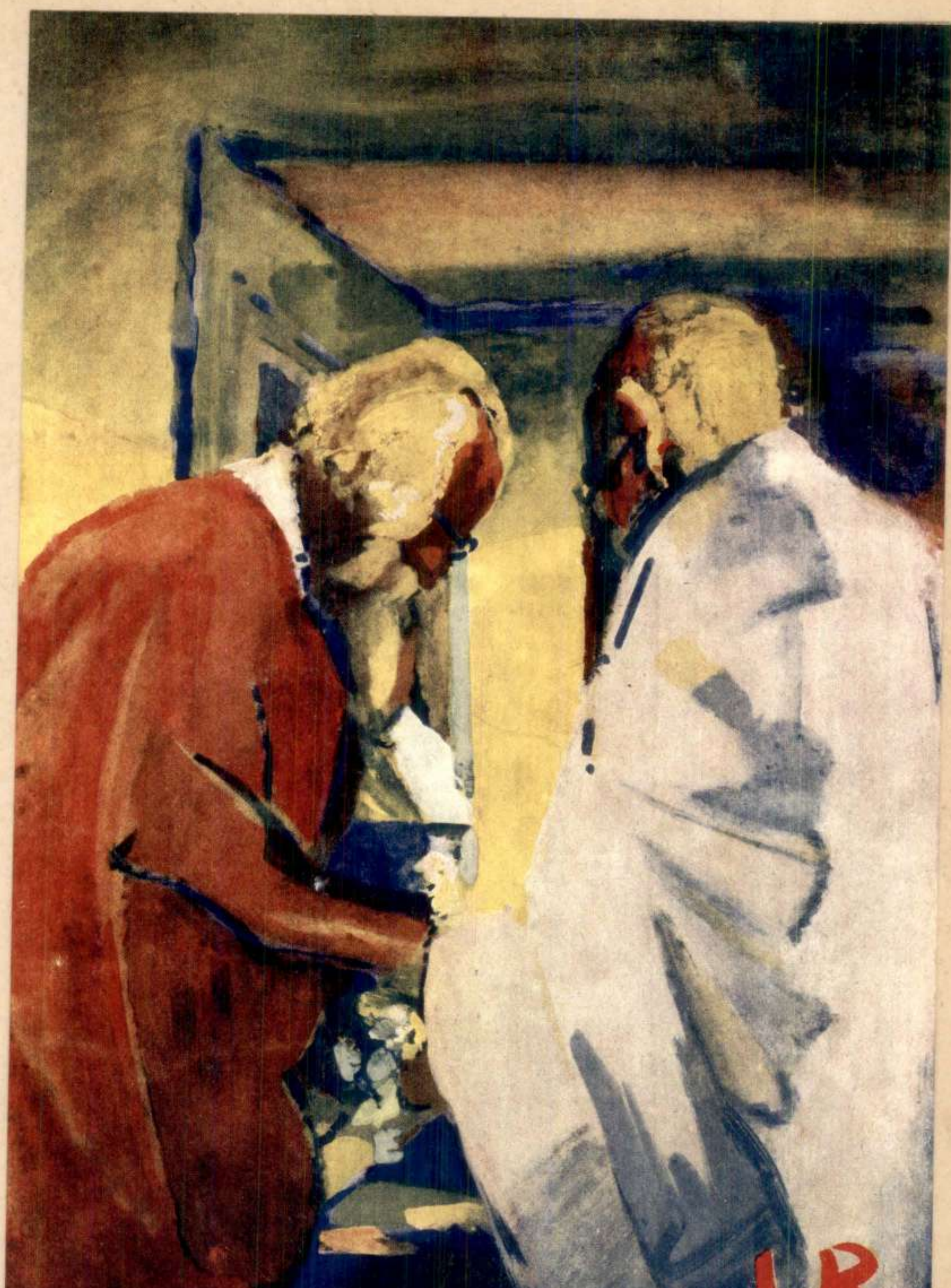
एक की प्रेरणा का स्रोत था जीवन की छन्दोमयी रहस्योन्मुखिता और दूसरे की प्रेरक शक्ति थी तपस्या से, साधना से अहंकार का नाश।

यह तो स्पष्ट ही है कि व्यक्ति हो चाहे समाज, उसके जीवन में नया खून दौड़ाने के लिये जीवन के प्रति इन दोनों दार्शनिक दृष्टिकोणों की अनिवार्यता सिद्ध है। हमें कल्पना भी चाहिए और कर्म भी, स्वप्न भी चाहिए और सत्य भी। तभी मनुष्य और उसका समाज अपने हर अंग को विकसित कर सकता है।

कवि एक फूल की तरह है जिसे अगर धूप चाहिए तो छाया और पावस भी चाहिए। इसलिये वह जीवन के हर पहलू को स्वीकार कर लेता है—छोड़ता किसी को भी नहीं। जीवन की रंगभूमि में जो नाटक अनुक्षण हो रहा है, वह उसके साक्षी की तरह होता है। वह उसे सूक्ष्म दृष्टि से देखता है क्योंकि वह स्वयं भी स्रष्टा है।

दूसरी ओर साधक या तपस्वी जीवन मन्दिर के सब उपकरणों को धो-माँज कर साफ़ करता है जिससे वह चमक उठे। या वह उस योद्धा की तरह है जिसने संघर्ष की ज़िन्दगी मोल ली है और जिसे मनुष्य की हर क्षुद्रता से जान-बूझकर जूझना भाता है।

पश्चिम के संसर्ग में हमारे जीवन में संदेह या मिथ्या दर्प और जीवन के प्रति एक प्रकार का साधनाहीन मोह पैदा हो गया था। देश



भावना और कर्म के प्रतीक

चित्रकार यामिनी राय के सौजन्य से

में एक ऐसा समाज बनने लगा था जिसने अपनी पुरानी सांस्कृतिक विरासत को संदेह की दृष्टि से देखा। फलतः देश की जीवन प्रणाली से उसका ताल टूट गया। वस्तुपरक सागर-पार की सभ्यता एक नशे की तरह अपने जादू से देश के युवक-संप्रदाय को मुग्ध करने लगी। शांतिनिकेतन के गायक और सेवाग्राम के कर्मी ने इसी मनोवृत्ति के ख़िलाफ़ बग़ावत का झण्डा ऊँचा किया। उनसे पूर्व भी देश के कुछ क्रांतद्रष्टा मनीषियों ने इस ओर दृष्टि फेरी थी लेकिन उनके विद्रोह में विद्रोह का स्वर ऐसा प्रबल नहीं था। इन नये विद्रोहियों को सुख की सेज और ऐश्वर्य का भण्डार त्यागना पड़ा। कवि को उनके जीवनदेवता ने जो बंसी दी थी, उसे वे अगर चाहते जो आजीवन रईसी की जन्म-सुलभ सुविधा के बीच अबाध बजाते रहते, किन्तु बंसी की जगह उन्होंने कर्तव्यरथ की बागडोर सँभाली। दूसरे ने न्याय लय में अपनी विपुल आमदनी के आश्वास को दूर ठेलकर बलराम की तरह कंधे पर हल उठाया। दोनों ने महान् के निकट अपने सीमित स्वार्थ को तिरोहित किया। उनकी बात सोचकर भगवान् बुद्ध अथवा प्रभु यीशु की याद आती है। एक बार फिर यह बात प्रमाणित हुई कि त्याग में ही विकास का बीज छुपा होता है; उत्सर्ग ही से सृष्टि पलती और पनपती है।

कवि ने गाया : 'तुम्हें पहचान लेने के बाद फिर कोई पराया नहीं रह जाता, किसी का द्वार हमारे लिये रुद्ध नहीं रह पाता। मेरी इस कातर प्रार्थना को स्वीकार करो कि इस अनेकरूपता के सीमाहीन खेल में तुम 'एक' के चरण मेरे हृदय को उज्ज्वल करें।' और उन्होंने अपने काव्य में, गान में, शिक्षा में, दीक्षा में, गाँवों के पुनर्गठन और समाज के पुनर्निर्माण में इसी 'अनेक' के मर्मव्यापी 'एक' की लीला को व्यक्त किया।

दूसरी ओर चर्खाधार हलधर ने भी यही सत्य दुहराया : 'वे वहाँ हैं जहाँ धरती के लाल धरती पर पसीना बहाकर धान का सोना उगा रहे हैं और मज़दूर गिट्टी तोड़ रहा है। आतप और मेह में वे उन्हीं के साथ श्रम कर रहे हैं। उनके दुकूल को धरती की धूलि ने मलिन कर दिया है। तब आओ हम अपनी पवित्र रामनामी को कमर से कस कर क्यों न इसी धूलि धूसरित धरा पर कर्म के क्षेत्र में उतर आएँ!'

दोनों ने अपना राजमुकुट उतार दिया और जिस पृथ्वी पर जन्म लिया था उसे छोड़ते समय वहाँ कुछ पुण्य का पराग बिखेर सकें, इसी की साधना की। दोनों ने पुकार कर कहा : "मुक्ति ? कहाँ है मुक्ति ? हमारे सृष्टिकर्त्ता स्वयं ही अपनी सृष्टि के बंधन को सानंद स्वीकारे हुए हैं—वे आद्यंत हमारे साथ हैं—हम में समाए हैं।"

इस प्रकार शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम के तीर्थों ने हमारे भीतर पूर्णतर जीवन की लौ जगाई। जिसे हम भूल से तरक्की कहते हैं उसके खोखलेपन को हमारे सामने ज़ाहिर किया। पूर्णतर जीवन का सार है सहज सरलता। कवि ने कहा : 'यही सरलता सुन्दर की पहचान है, और परिचय है।'

और यही तो सदा से होता भी आया है। इतिहास के कक्ष में कवि और पैग़म्बर ने अपने को पुरोहित और श्रमजीवी विभाग के साथ कंधा मिलाकर खड़ा पाया है। हमारे समय में पैग़म्बर तो अब तक नहीं जनमे हैं और पुरोहित जी ने अपने पुण्यकर्तव्य की अवहेलना की है। किन्तु उनके स्थान पर कवि और किसान के गौरव की छुट देखने का सौभाग्य हमें मिला है। दोनों को हमने सत्य के मंदिर में साथ-साथ प्रवेश करते देखा है। आनंद और तपस्या की उपलब्धि के मार्ग से ही सत्य के मंदिर तक जाना होता है। शायद इसी से एक दिन कवि ने कहा था : 'शांतिनिकेतन आनंदमय, सत्य का प्रतीक है, साबरमती तपोमय सत्य का।' और कदाचित सत्य की हम उस पंछी के साथ भी तुलना कर सकते हैं जिसके पंख युगल होकर भी एक हैं या उस वृक्ष की भी याद कर सकते हैं जिसकी शाखाओं पर दो स्वर्णिम विहंग बैठे थे।





विश्वनाथ मुखर्जी

पड़ोस के परेश बाबू को एक अर्से से जानता हूँ—जानता ही नहीं हूँ बल्कि उनका बड़ा कृतज्ञ भी हूँ ! सन्' ३२ के समय जब शहर में दंगा हुआ था—उसी समय से मुसलमानी बस्ती से हटकर यहाँ आ बसा हूँ—तभी से इनसे परिचित हूँ । तभी एक दिन, 'चोर ! चोर !—पकड़ो, पकड़ो'—की आवाज़ ने मुझे उनके घर में अनधिकार प्रवेश करने और चोर पकड़ने में सहायता देने का अवसर दिया था और मैंने चोर को पकड़ा भी था । चोर खासा हृष्ट-पुष्ट था । घनी मूँछें, चौड़ा ललाट, चुन्नटदार धोती और रेशम की कमीज पहने था । उसे पकड़ कर मैंने परेश बाबू के सामने उपस्थित कर दिया ।

नीचे से ऊपर तक उसे देखकर वे बोल उठे—कहिये, मेरे घर पर पधारने की कृपा क्यों की गई ?

चोर चुप रहा ।

"अब आपकी खातिरदारी किस प्रकार की जाय ?"—सिगरेट की राख झाड़ते हुये उन्होंने पूछा । चोर ने गिड़गिड़ा कर उनके पैर पकड़ लिये और उनको आँसुओं से तर करते हुये क्षमा की प्रार्थना की और बोला—"आज तीन दिन से घर में पत्नी और बच्चे पेट पर कपड़ा बाँधे जबरन भूख का अवरोध कर रहे हैं......"

"और लाचारी की हालत में आपने इस कार्य को स्वीकार कर लिया । क्यों ? यही न !"—उन्होंने व्यंग करते हुए कहा ।

जब तक चोर अपने को संयत कर हकलाते हुए कुछ कहे, उसके पहले ही उन्होंने पुनः कहा—"इससे पहले तुम्हें चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये था, तुम्हारे ऐसे आदमी मानवता के नाम कलंक का टीका लगाये—पृथ्वी का बेकार बोझ बढ़ाये हुए हैं । अच्छा, जब बड़े घर की हवा खाने जाओगे तब तुम्हारे पत्नी-बच्चों को कौन देखेगा ?"

मैं और उनका नौकर, दोनों पास ही खड़े हुए परेश बाबू की ओर देख रहे थे । चोर की आकृति को देखकर मुझे दया आ गई । सोचा—काश ! इसे छोड़ दिया जाता । न जाने इसके घर की क्या हालत होगी ? बेचारा...अभागा......

एकाएक परेश बाबू ने फटकारते हुए कहा—"जाओ, अपना मुँह काला करो ।"

मैं परेश बाबू की इस दरियादिली पर प्रसन्न मुद्रा में अवाक् हो देखने लगा ।

चोर धीरे-धीरे उठा और आगे की ओर अग्रसर हुआ तभी न जाने क्या सोचकर उन्होंने उसे पुकारते हुए कहा—"इससे अच्छा कोई काम क्यों नहीं कर लेते ? क्या वह करने की इच्छा नहीं है ?"

तभी उसने रुंधे हुए कण्ठ स्वर में कहा—"कोई काम मिले तो क्यों न करलूंगा बाबू ! लेकिन......"

"लेकिन तुम जैसे अभागे चोरों के लिए इतनी बड़ी दुनियाँ में कोई काम ही नहीं है ! क्या कहीं आजमाया था ?"

प्रत्युत्तर में चोर चुप रहा । हम मुस्कुरा उठे ।

"बागवानी कर सकोगे ?"—परेश बाबू ने पुनः पूछा।

"जी, क्यों न कर सकूंगा !"—किंचित प्रसन्न हो उसने कहा।

"अच्छा, जाओ, कल से आ जाना, लेकिन याद रखना अब अगर हाथ की सफाई दिखलाई तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"—कह कर उन्होंने अधजली सिगरेट को फेंक दिया।

परेश बाबू के इस विचित्र व्यवहार पर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। यदि उनकी तारीफ न सुनी होती तो उसवक्त मैं उन्हें अवश्य पागल करार देता। मैं भी उन्हें नमस्कार कर लौटने को था कि उन्होंने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा..."सुनिये, आप तो मेरे पड़ोसी हैं न ?

मैंने संकोच के साथ दबी जबान से कहा—"जी हाँ।"

"आइये, बैठिये। पड़ोसियों से तो प्रेम करना चाहिये—सो आप आये और चलने भी लगे। कमसे कम चाय तो पीते जाइये।"—और फिर नौकर से चाय लाने के लिए कह कर बोले—"आज आप न आये होते तो वह कुछ मार ही खे जाता। इस कष्ट के लिए आपको धन्यवाद ! देखिये कल आता है या नहीं। मैंने तो अच्छा ही किया है। अपने से किसी का बुरा करना नहीं चाहता। कहिये आपकी क्या राय है ?"

"जी, ठीक है।"—मैं मुस्कुरा उठा। सामने बैठा व्यक्ति बड़ा विचित्र और सनकी सा प्रतीत हुआ।

इस साधारण घटना से हम आपस में परिचित हो गये। उन्हें जितने निकट से मैंने देखा है, उतने निकट से किसी और ने नहीं देखा है, इसका मुझे गर्व है और सन्तोष भी।

अगाध सम्पत्ति के अकेले भोगी हैं। पत्नी, विचार न मिलने के कारण, अक्सर अपने मैके रहती है। पिता पहले सन का व्यापार करते रहे और कई मिलों में उनके शेयर थे जो अब भी हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने कभी भी व्यापार में दिलचस्पी नहीं ली। परिणाम स्वरूप मैनेजर और अन्य नौकर रकम उड़ा गये और कई हजार के घाटे के बाद इन्हें वह व्यापार बन्द कर देना पड़ा। इस बाबत एक दिन मैंने जिक्र भी किया तो प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—"आखिर किसके लिए ? मेरे बाद इस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है ही कौन ? मिलों में जितने शेयर हैं उन्हीं से जब खर्च चल जाता है तब क्यों अन्य मजदूरों का शोषण करूँ ?"

इसके अलावा मुझे समझाने को बहुत कुछ कह गये, मैं चुप रहा, मैं उनकी इस उदासीनता, पारिवारिक अशान्ति, चिढ़ और वितृष्णा से परिचित था। लगता है, जीवन के प्रति उन्हें कोई मोह, ममता नहीं है, जीने की लालसा भी नहीं है। इच्छामृत्यु का वरदान मिल जाने पर शायद वे मौत का आह्वान कर सकते हैं। इसी खिजलाहट में एक बार चुपचाप बम्बई चले गये थे और फिर वहाँ से अमेरिका चले गये थे। वहाँ से जब लौटे तब स्वास्थ्य खराब हो गया था। बोले—"वहाँ भी शान्ति नहीं है। सोचा था, कुछ पुरानी बातों को भुला सकूँगा ताकि कुछ......कुछ नहीं।" अचानक यहाँ वे रुक गये। तब मुझे लगा जैसे वे अपने में कुछ भेद छिपाये बैठे हैं। कई वर्ष साथ रहने पर भी उनकी श्रीमती जी के दर्शन नहीं हुए। एक बार कहा भी तो बोल उठे—

"बेकार अपने घाव को हरा करने से क्या फायदा ? जो स्वयं आना नहीं चाहती मैं उसके व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करता। पत्नी पर पति का हक है, लेकिन वह आग का शोला है। अब उसके आने पर शायद आत्म हत्या कर लेना पड़े तो कोई ताज्जुब नहीं। दुनियाँ में मुझे सब से अधिक नफरत है तो अपनी पत्नी से। मैं अब अपने जीवन का बोझ बढ़ाना नहीं चाहता।"

जब मैं उनकी बातों पर गौर करने लगता हूँ तो आश्चर्य सागर में गोते खाने लगता हूँ। सदा उखड़े-उखड़े से रहते हैं। अक्सर मन की प्यास बुझाने के लिए अप्सराओं के यहाँ चल देते हैं। वेदना भरी मुस्कुराहट ले, गर्म स्वाँस छोड़, प्याले पर प्याला पीते हैं। यह पीने का शौक, मेरे इनके यहाँ पहुँचने के पहले से ही है। शाम को जब आफिस से लौटता हूँ तो उनके साथ बाग में टेनिस खेलना पड़ता है या शतरंज के मोहरे लेकर अर्द्धरात्रि तक परेशान होना पड़ता है। उनकी आज्ञा पालन में त्रुटि होने पर अक्सर नाराज हो जाते हैं। फिर हफ्तों बातें भी नहीं करते। जब भावावेश में कुछ रहते हैं तब यदि उसमें कहीं टोका या ऐतराज किया—बस झल्ला उठते हैं। शिकार के भी शौकीन हैं। अक्सर उस समय भी साथ देना पड़ता है। एक बार दूर शिकार खेलने के लिये जाने के कारण लौटने में दो दिन की देर हो गई। आफिस से जवाब मिल गया तो क्रोधवश घर पर ही पड़ा रहा। दौड़े हुए आये—साथ में डाक्टर भी था। मैंने कहला भेजा था—तबियत ठीक नहीं है। जब सम्पूर्ण विवरण जान गये तो हँसकर बोले—बस इतनी सी बात ! कल ही तुम्हारे लिये बंगाल बैंक में कैशियर की जगह खाली करवा देता हूँ। इसी तरह कई जगह की सर्विस छूटी और लगी। कई बार दिल में आया—स्थान परिवर्तन कर लूँ परन्तु मकान-दारों की शरारत और सुविधाजनक स्थान न मिलने के कारण हट नहीं सका।

(२)

उस दिन यकायक सुबह ही बुला भेजा। जब उनके पास पहुँचा तो बोल उठे—"अरे भाई महेश ! देखो, तुम्हारी भाभी ग्यारह बजे की ट्रेन से आ रही हैं। कार लेते जाओ। उन्हें ले आना। मैं स्वयं ही जाता, लेकिन कल बरामदे पर से गिर जाने के कारण मोच आ आ गई है। पहचानने में दिक्कत नहीं होगी। वह सामने वाला फोटो है, पहचान लो। सम्भव है, छः वर्ष में कुछ परिवर्तन हुआ हो। प्रमाण के लिये यह तार लेते जाओ।"

प्रतिवाद में कुछ कहने की शक्ति न थी। आज हेड आफिस से जबरल मैनेजर बैंक में आने वाले थे। दस बजे पहुँच जाना जरूरी था। संकोचवश कह भी न सका। सिर्फ मन ही मन क्रोध को उद्वेलित करता रहा। स्टेशन पर उनकी श्रीमती जी मिलीं, उन्हें पहचानने में विशेष दिक्कत नहीं हुई। लम्बी-पतली सी थीं। रूप तो मानों फटा पड़ रहा था। बड़ी प्रसन्नता के साथ मिलीं और साथ में परेश बाबू को न देखकर पूछा—"वे नहीं आये ?"

"जी नहीं ! उनके पैर में मोच आ गई है।" अत्यन्त नम्रता के साथ मैंने कहा।

क्षण भर के लिये उनकी आकृति स्याह पड़ गई। पुनः अपने को संयत कर बोलीं, "आप······?"

"जी, मैं उनका छः वर्ष का पड़ोसी और मित्र हूँ।" अधूरे प्रश्न का उत्तर देते हुए मैंने कहा।

चम्पई रंग की साड़ी, हल्के नीले रंग का ब्लाउज़, कानों में झूलते हुए कर्णफूल, मस्तक पर मकरिका, हाथ में तीन-तीन अँगूठियाँ पहने हुए थीं। एक हाथ में पर्स लटकाये वे कार के पास आईं। एक होल्ड-आल के सिवा कोई विशेष सामान न था। उनके साथ चन्द मिनट रहने पर यह विचार एक क्षण के लिये भी उत्पन्न नहीं हुआ कि सामने खड़ी नारी से परेश बाबू इतना पीड़ित हैं कि वे इसे आग का शोला कहते हैं। उनके सद्व्यवहार और वीणा विनन्दित स्वर से मैं पुलकित हो उठा।

जिस समय हम कार से उतरे साढ़े ग्यारह बज चुके थे। जी कड़ा करके बैंक गया तो देखा, जनरल मैनेजर आ गये हैं, परन्तु उनका ध्यान अभी क्लर्कों की ओर नहीं है। वे भीतर मैनेजर के कमरे में न जाने क्या कर रहे थे। मेरी जगह एक दूसरा क्लर्क कैशियर का काम कर रहा था। मेरे बैठने के कुछ देर बाद मैनेजर साहब बाहर आये और आग्नेय नेत्रों से मेरी ओर देखा।

जनरल मैनेजर के जाते ही अपने कमरे में बुलाकर मैनेजर ने लम्बी डाट बताते हुए कहा—"यह पहली गलती होने के कारण छोड़ देता हूँ। आइन्दा ऐसा करने पर मेरे यहाँ जगह न रहेगी।"

शाम को लौट कर परेश बाबू से सब हाल कहा तो मौन साध कर सुनते रहे। बोले कुछ भी नहीं बल्कि शतरंज खेल कर मन बहलाने को कहा। इससे और भी निराशा हुई और मेरा दिल जल उठा।

जब चलने लगा तो बोल उठे—"कल से तुम मेरे यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में काम करना। बैंक जाने की आवश्यकता नहीं है।"

दूसरे दिन बारह बजे स्वयं मैनेजर साहब दौड़ते हुए आये और मुझसे बोले, "मि० शुक्ला, आप अपना त्यागपत्र वापस ले लीजिये। कल की बातों से जो कुछ आपको ठेस पहुँची है, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। अधिक क्या कहूँ, यदि मेरी नहीं तो बैंक की इज्जत बचाने के लिए चले चलिये।"

मैं उनकी बेतुकी बातों से स्तब्ध हो उठा। यह समझते देर न लगी कि इसमें परेश बाबू का हाथ अवश्य है। कहा—"जरा ठहरिये। परेश बाबू से पूछ आऊँ।"

परन्तु वे न माने। मेरे साथ गये और परेश बाबू से बड़े विनीत स्वर में क्षमा याचना की।

परेश बाबू ने सिगरेट के धुँये को ऊपर छोड़ते हुए बड़ी लापरवाही के साथ कहा—"क्या करूँ मि० त्रिपाठी! मुझे भी प्राइवेट सेक्रेटरी की बड़ी आवश्यकता है। आप दूसरे कैशियर की तलाश कर लें। मैं इस विषय में कुछ भी दलील सुनना नहीं चाहता।"

"लेकिन रुपये उठा लेने से तो बैंक···।"

"तो मैं क्या करूँ? मेरे आदमी की बेइज्जती मेरी बेइज्जती है। मैं ऐसे बैंक से सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। यह मेरा आखरी निश्चय है। आप जा सकते हैं।"

बाद में मालूम हुआ कि परेश बाबू बैंक से अपना सब एकाउन्ट उठा लेना चाहते हैं। परन्तु बाद में न जाने क्या सोच कर उन्होंने कहला भेजा कि कैशियर का प्रबन्ध बैंक कर ले। मैं अपना रुपया नहीं निकालूँगा।

(३)

प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में काम करते दो महीने हो गये। उनका जीवन अब भी पहले ही जैसा चलता है। कहीं जरा सा भी परिवर्तन नहीं हुआ है। हाँ! आजकल घर पर 'पीना' छोड़ दिया है।

भोजन के पश्चात् अपने कमरे में प्रवेश कर रहा था कि बगल वाले कमरे में से, जिसमें अक्सर परेश बाबू बैठते हैं, भाभी साहबा की आवाज़ (परेश बाबू की पत्नी को अब इसी नाम से पुकारता हूँ) सुनाई पड़ी—"पूछती हूँ आखिर क्यों? मेरा अधिकार क्या कुछ भी नहीं है?"



क्षण भर में उनकी आकृति स्याह पड़ गई। पुनः अपने को संयत कर बोलीं, "आप!"

"अधिकार न होता तो यहाँ आश्रय लेने किस मुँह से आती ? आई हो, रहो। मेरा जो कर्त्तव्य है, कर रहा हूँ। मेरे व्यक्तिगत जीवन में तुम्हारी दखल मुझे कतई पसन्द नहीं है।"

"लेकिन तुम्हें, तुम्हारी बर्बादी को देखते हुए आँखें कैसे मूँद लूँ।" गीले कण्ठ स्वर से भाभी ने कहा—"तुम क्या पाषाण से मोम नहीं बन सकोगे ?"

"इतनी याचना की आवश्यकता नहीं। अपने हृदय को काबू में रखो और जबान को सम्हाले रहो यही मेरे लिये बहुत है। अब मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी छाया से भी दूर भागना पड़े।" परेश बाबू ने खाँसते हुए कहा—"माना मैं पतित हूँ, बेहया, निर्लज्ज, अवारा, सब कुछ हूँ, परन्तु किसी के धन या औरत पर नजर नहीं डालता।"

"और रेखा !"—इस बार भाभी का स्वर तीखा था।

"चुप रहो ! एक बार नहीं पचास बार मना कर चुका हूँ कि रेखा का नाम मत लिया करो। तुम्हारी ऐसी नारी से रेखा की तुलना नहीं की जा सकती।" कहते हुए परेश बाबू मेरे कमरे में आ आरामकुर्सी पर लेट गये।

पग-ध्वनि सुनते ही मैं उनके एक पत्र की नकल उतारने लगा। गोया मेरा उधर ध्यान ही नहीं है।

कुछ देर बाद वे बोले—"शुक्ल जी। एक टिकट शिमला का लेते आइये।"

आज से पहले जहाँ भी जाते थे, मुझे अपने साथ अवश्य ले जाते थे। इस बार उन्हें अकेले जाते देख असाधारण कौतूहल उत्पन्न हुआ। जाकर शिमले का टिकट खरीद लाया। आवश्यक सामान भी बाँध दिया। शाम की गाड़ी से वे चल दिये।

दूसरे दिन मेरे कमरे में भाभी साहबा ने प्रवेश करते हुए पूछा—"इस बार सरकार की सवारी कहाँ गई है ?"

"शिमला गये हैं।"—कहते हुए कुर्सी पर से अभ्यर्थना के लिये खड़ा हो गया।

"बैठिये-बैठिये। अपनी भाभी के लिए इतनी अभ्यर्थना की आवश्यकता नहीं है।" मुस्कुराती हुई वे बोल उठीं—"आप नहीं गये ?"

"उनकी इच्छा, मैं कैसे जान सकता हूँ ? आज छः वर्ष से उनके साथ हूँ परन्तु वे क्या हैं, समझ नहीं पाया। कभी तो बच्चे से भी अधिक सरल और भावुक बन जाते हैं और कभी-कभी इतने कठोर बन जाते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।"—बैठते हुए मैंने कहा।

"अच्छा एक बात पूछूँ, सच बताइयेगा ?" प्रश्नसूचक भाव से मेरी ओर देखते हुए वे बोलीं।

"पूछिये। जानता होऊँगा तो अवश्य बता दूँगा। परेश भइया और आप मेरे लिए भिन्न थोड़े ही हैं। आप लोगों के बीच जो दीवार खड़ी है, यदि वह मेरी सहायता से ढह जाय तो इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या आनन्द की बात हो सकती है ?"

"वह सामने वाला जो फोटो है, क्या वह कभी प्रत्यक्ष यहाँ आई थी।"—तेज आँखें गड़ा कर भाभी ने पूछा।

"नहीं।"—एक बार फोटो की ओर देखकर साधारण भाव से मैंने कहा।

उनकी आँखों में जो सन्देह का प्रश्न छिपा था, वह मिट गया। बोलीं—"एक काम कर सकियेगा ? क्योंकि आप शायद हमारे सब भेदों से जानकार हैं। बात यह है कि यह जो रेखा है न, यों अब तो भाई-बहन का सम्बन्ध जोड़ते हैं, परन्तु वास्तव में यह इनकी प्रेमिका थी और अब भी ये उसके पीछे घुलते जा रहे हैं। जब ऐसा ही था तब क्या आवश्यकता थी मुझसे शादी करने की ? जितना खिंचाव उनका रेखा की ओर है यदि उसका शतांश भी मेरे प्रति होता तो मैं अपने को धन्य समझती। यों रेखा से मुझे कोई चिढ़ भी नहीं है। उन्हें अपना बनाने के लिए चिढ़ पैदा कर लेती हूँ, परन्तु मेरे सभी अस्त्र विफल हो गये। हार कर यहाँ आना भी बन्द कर दिया। विवाहिता नारी को अपने मातृगृह पर पड़े रहने का अधिकार नहीं रह जाता इसलिए परास्त होकर लौटना ही पड़ता है।" यकायक वे यहाँ चुप हो गयीं। पुनः कुछ देर बाद पास आ मेरे हाथ को अपने हाथ में दबा कर बड़ी आजिजी के साथ बोल उठीं—"मैं तुम्हारी बड़ी एहसान-मन्द होऊँगी भइया यदि तुम उनकी यह दशा सुधार सको। आज अपने अन्तर में कितनी पीड़ा को प्रश्रय दिये बैठी हूँ, वह तुम्हें बताने में असमर्थ हूँ। सब कुछ होते हुए भी मैं विधवा के सदृश दुख भोग रही हूँ। बोलो, क्या मेरा यह काम कर दोगे ?"

मैं भी अपने में पीड़ा का अनुभव करने लगा था। कहा—"अच्छी बात है। कोशिश करूँगा, लेकिन सब से भारी अड़चन यह है कि उनसे कोई बात कहने में डर और झिचक दोनों पैदा हो जाती हैं।"

वे अपने रुमाल से आँसू पोंछती हुई चली गयीं।

बहुत सोच-विचार करने के बाद भी कोई उपाय नहीं निकाल सका। इसके कई दिन बाद अचानक 'रमेश की मृत्यु हो गई आज शाम को' का तार मिला। रमेश कौन है ? समझ नहीं सका। बाद में भाभी की सहायता लेने पर जान पाया कि रमेश रेखा के पति हैं। इस समाचार पर भाभी अत्यन्त खेद प्रकट करने लगीं।

तभी मैंने भाभी से कहा—"आप कानपुर चली जाइये और मैं भइया को तार देकर बुलाता हूँ।"

भाभी शाम को रवाना हो गयीं। उधर मैंने परेश बाबू को भी शिमला तार भेज दिया। एक हफ्ता बीत जाने पर भी कोई नहीं आया। अट्ठारहवें रोज पति पत्नी एक साथ आये। दोनों की आकृति पर वेदना की छाप थी। दो दिनों तक मकान में ऐसा सन्नाटा छाया रहा जैसे मि० रमेश की असामयिक मृत्यु यहीं हुई हो। पुनः वही बेढंगी रफ्तार शुरू हो गई। परन्तु इस बार आपस के व्यवहार में काफी परिवर्तन हो गया था।

(४)

इस घटना को बीते साल भर के ऊपर हो गया। अब परेश बाबू अक्सर मौन रहते हैं। पहले से अधिक उत्साहहीन हो गये हैं। युवावस्था में ही जैसे बुढ़ापे ने आ घेरा था। भाभी अब मेरे उपदेशानुसार अधिक शान्त रहती हैं। उनके हृदय की जलन, जो प्रत्येक नारी के

लिये स्वाभाविक है, मिट चुकी थी। वे परेश बाबू के अत्यन्त निकट आ गई थीं। परेश बाबू में भी काफी परिवर्तन आ गया था। वे बोलते बहुत कम थे। अब बाहर भी कभी-कभी ही जाते थे। भाभी के प्रति जो असन्तोष की भावना रही, वह मिट चुकी थी। अक्सर हम तीनों, ब्रिज, टेनिस और शतरंज खेला करते थे। शाम के समय नदी किनारे या बाहर टहलने चले जाते थे।

अचानक एक दिन आँधी, बवण्डर और भूचाल तीनों साथ ही आये। मैं अपने दफ्तर में बैठा था। तभी नौकर ने आकर कहा–मैनेजर साहब ! बड़े बाबू से भेंट करने के लिए एक औरत आई है।

"औरत आई है ?"—चौंक कर मैंने पूछा।

नौकर सिर्फ सर हिलाकर रह गया। मैं उठकर बाहर आया। देखा, एक शुभ्र-वसना, धँसी हुई आकृति लिये, देखने में सुन्दर, बगल में दो लड़के लिये सर झुकाये खड़ी थी। पूछा–"कहिये, क्या चाहती हैं आप ?"

"क्या—परेश बाबू का यह मकान नहीं है ?"—वह पास आकर बड़ी उत्कण्ठा के साथ बोल उठी—"वे यहाँ नहीं रहते ?"। उसके स्वर में निराशा की आभा फूट उठी।

"यही उनका मकान है, वे भीतर हैं।"—मैंने कहा।

सहसा उसकी आकृति पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। बोली–"परेश भइया से कह दीजिये कि रेखा आई है।"

"रेखा !"–यह शब्द दोहराते हुये मैं चौंक उठा। भीतर जाकर परेश बाबू से कहा तो वे विक्षिप्त भाव से बोल उठे—"उससे कह दो वह चली जाय।"

"लेकिन भइया ! मैं जाने के लिये तो नहीं आई हूँ। अब तुम्हारे सिवा और कोई सहारा देने वाला भी नहीं रहा।"—दरवाज़े के समीप से रेखा ने कहा।

"ससुराल वाले······"

"मुझसे मत कहलाओ भइया। मैं उनकी बातों को दुहरा नहीं सकती।" रेखा का धैर्य्य टूटता जा रहा था। वह धड़ाम् से दरवाज़े के पास बैठ गई।

परेश बाबू में कोई भी परिवर्त्तन नहीं हुआ, परन्तु स्वर में काफी गम्भीरता आगई। सिगरेट का एक ज़ोर का कश खींच कर बोले—"कैसे आई तुम ?"

"उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया।"

तभी परेश बाबू के पीठ की तरफ के दरवाज़े से भाभी ने प्रवेश किया। इसका आभास परेश बाबू को न लगा। वह चुपचाप द्वार के समीप खड़ी हो गई।

"घर से निकाल दिया···हूँ···क्यों ?"

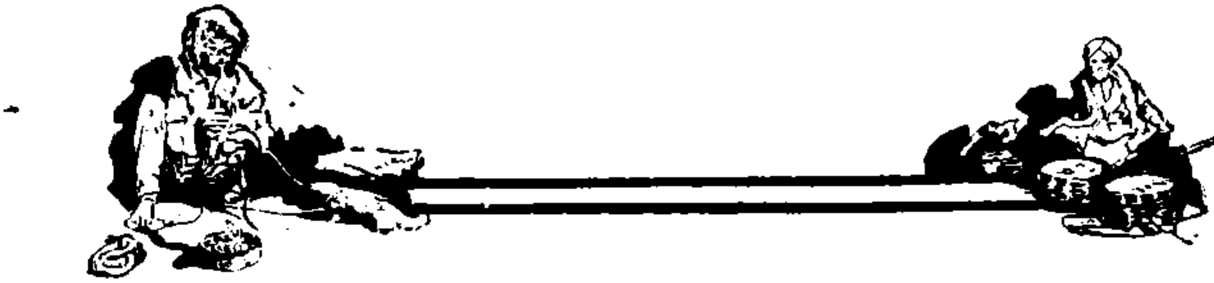
"मैं···मैं कलंकिनी हूँ। उनको मैंने ही विष दिया है। ये लड़के तुम्हारे ही हैं···और···मैं तुम्हारी उपपत्नी हूँ।"–अवरुद्ध कण्ठ से कहती हुई वह शिथिल पड़ने लगी।

"यह ठीक है रेखा ! मैं तुमसे प्रेम करता था, लेकिन···लेकिन उस दिन विवाह के बाद से वह प्रेम और कुछ हो गया—जब से तुमने भइया के नाम से सम्बोधन कर पत्र लिखा। परन्तु अभी भी शीला को मेरे प्रति विश्वास नहीं है। वह मुझे काँटे सा गड़ रही है, सिर्फ इसलिये कि मैं अपनी सफाई देकर उसके मत को परिवर्त्तन न कर पाया। पिछली घटना के कारण यद्यपि आपस में समझौता हो गया है, फिर भी सन्देह की रेखा मिट नहीं पाई है। अब तक अन्तर में आग जलती रही-सो राख पड़ते-पड़ते बुझ सी गई है–मैंनहीं चाहता कि तुम्हारी मौजूदगी उस बुझी हुई आग को कुरेद दे। शायद शीला भी तुम्हारा यहाँ रहना पसन्द न करे। हमारा आपस का सम्बन्ध चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु हमें भाई-बहन कोई नहीं मान सकता। मैंने शीला के प्रति कम अत्याचार नहीं किया है फिर भी···"

"तुम भले ही अपनी बहन को स्थान न दो, लेकिन मैं अपनी ननद को अवश्य स्थान दूँगी।"—कहती हुई शीला भाभी आगे बढ़ आईं और रेखा को बाहों का सहारा दे सादर भीतर ले गईं।

पुनः कुछ देर बाद दोनों बच्चों को साथ ले भाभी आईं और बोली-"मेरे राजा भइया। छोटे मामा के साथ जाकर कपड़े, खिलौने और जो मन चाहे सो ले आओ।" और फिर बच्चों को चुमकारते हुये मेरी ओर बढ़ा दिया।

मैं परेश बाबू की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगा। वे एक टक शीला भाभी की ओर देखते हुये मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।



हिन्द और हिन्देशिया

डाक्टर कालीदास नाग



डा० शहरियार और पण्डित नेहरू

दूसरे महायुद्ध के अन्त में भारतीय समाचारपत्रों और जनता को हिन्देशिया द्वारा डच साम्राज्यवाद के विरुद्ध चलाये गये स्वाधीनता आन्दोलन का कुछ पता लगा। कदाचित् कुछ लोगों को यह जान कर आश्चर्य हो कि इतिहास के उषा काल से भारत और हिन्देशिया का सम्पर्क रहा है। आज से लगभग ५० वर्ष पहले ट्रिनिल नदी की घाटी में बन्दर के समान मानव की एक खोपड़ी मिली थी। उससे पता चलता है कि पाषाण युग के मानव के कुछ अवशेष जावा में उपलब्ध हैं—

(१) सुराबाया के पश्चिम में स्थित जेटिस क्षेत्र में जिन अवशेषों की उपलब्धि हुई वे प्रारम्भिक पाषाण काल के मानव के कदाचित् सब से पहले अवशेष हैं।

(२) ट्रिनिल की घाटी में प्राप्त अवशेष मध्य पाषाण काल के मानव के हैं। उसके साथ ही हिमयुग के बालोंदार हाथी की उपलब्धि हुई जो उस युग के भारतीय हाथी से मिलता जुलता है।

(३) जावा के केन्द्रीय स्थान सोलो में प्राप्त अवशेष उत्तर पाषाण काल के मानव के हैं। उसके साथ फरसा (जैसा सोन और नर्बदा की घाटियों में मिला है) तथा अन्य पत्थर के अस्त्र थे जो ईसा से एक लाख वर्ष पूर्व के हैं। १६२६ में प्राप्त चीन के पेकिंग मानव के समान वह हड्डियों के बने सुन्दर औज़ार भी उपयोग में लाता था।

(४) अभी हाल में साम्पुंग गुफ़ा में प्राप्त मानव-अवशेष कदाचित् नव-पाषाण युग (१०,००० ई० पू०) के हैं। ये नीलगिरि के टोडा और लंका के वेड्डा लोगों से मिलते हैं जिनको कि मानवशास्त्रवेत्ता उन आदिम जातियों के पूर्वज बताते हैं जो आजकल आस्ट्रेलिया में हैं। ये आस्ट्रोनेशियन जिनको इन्डोनेशियन भी कहते हैं वेड्डा लोगों की नस्ल के मालूम होते हैं। कदाचित् ये लोग दक्षिण भारत से सुमात्रा, बोर्नियो, सेलेबिस तथा फ़िलिपाइन गये थे। अपने साथ वे बाँस, केला, ईख तथा चावल की खेती का ज्ञान ले गये थे जिनसे प्रत्येक भारतीय परिचित है। उन लोगों ने नदी तथा समुद्र को पार करने की विद्या का विकास किया तथा अपनी डोंगियों पर सवार होकर दूर-दूर तक पोलिनेशिया तक पहुँच गये। प्रशान्त क्षेत्र के वे प्रथम अन्वेषक थे।

इस तरह भारतीय और हिन्देशियाई मिलकर दक्षिण पूर्वी एशिया और पोलिनेशिया के अन्वेषण में लगे हुए थे। उसके बाद के युग में (२००० ईसा पूर्व से १००० ई० पूर्व तक) हम पूर्वी भारत, सुमात्रा और जावा में एक ही सभ्यता का अस्तित्व पाते हैं जिसमें विशाल पाषाण स्मारक, मालाएँ, हड्डी से बनी वस्तुएँ, तीर, टीलों पर बने मकान तथा मिट्टी के बर्तन मिलते हैं जिनमें चावल, बाजरा तथा वल्कल वस्त्र थे।

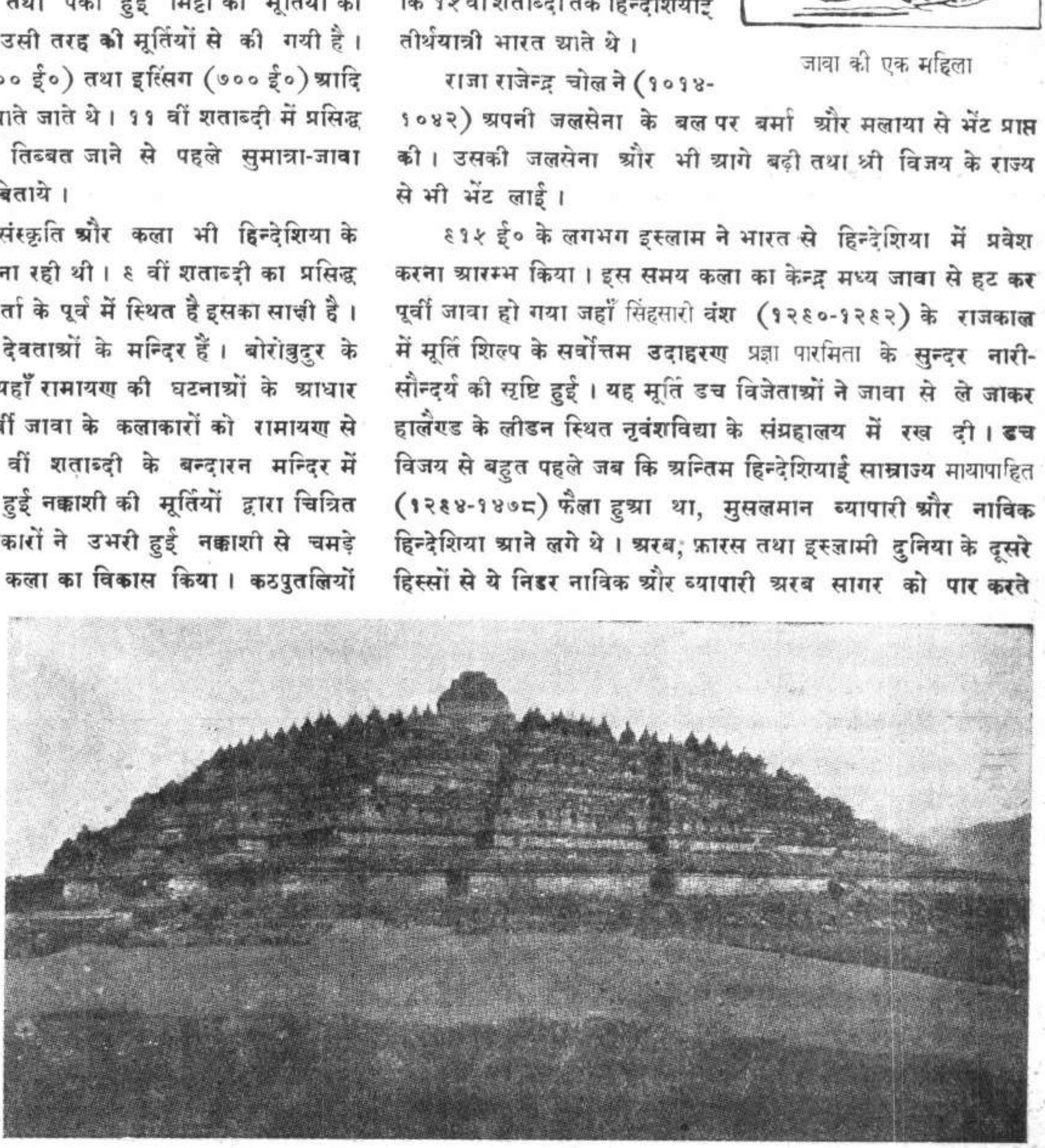
प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व के अन्त में हम देखते हैं कि हमारे प्राचीनतम महाकाव्य रामायण में जावा का वर्णन यवद्वीप के नाम से आता है। बौद्ध जातकों में सुमात्रा का वर्णन स्वर्णद्वीप के नाम से है। इस प्रकार भारतीय व्यापारी, प्रवासी एवं साँस्कृतिक सन्देशवाहक आज से कम से कम २००० वर्ष पूर्व हिन्देशिया जाने लगे तथा वहाँ बसने लगे थे। ताम्रलिप्ति (वर्तमान तामलुक) बंगाल में तथा गंजम के पास गोदावरी के मुहाने पर पालौरा—दो मुख्य बन्दरगाह थे। ये बन्दरगाह "स्वर्णभूमि" के सिंहद्वार थे। उन दिनों का बृहत्तर भारत—जिसमें बर्मा, मलाया, सुमात्रा और जावा सम्मिलित थे—कदाचित् इसी नाम से प्रसिद्ध था। भारतीय प्रवासियों को मलाया की भाषा में आजकल 'ओराग क्लिंग' कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'कलिंग के निवासी।'

चौथी और पाँचवीं सदी में बंगाल, कलिंग और आंध्र एवं बाद में पल्लव के निवासियों का प्रवास प्रारम्भ हुआ। उसी समय के कुछ लेख पल्लव लिपि में मिलते हैं जिनका श्रेय पश्चिमी जावा के हिन्दू राजाओं को है। ब्राह्मण धर्म का यह प्रभाव दक्षिणी भारत से अगस्त्य ऋषि के सन्देश के साथ आया प्रतीत होता है। मध्य जावा में स्थित छोटे-छोटे किन्तु सुन्दर मन्दिरों तथा वहाँ की मूर्तिकला पर निश्चय ही पल्लव, चालुक्य और गुप्त कला का प्रभाव है जो ५ वीं और ७ वीं सदी के बीच प्रचलित थी। इसके बाद (७३० ई० से ८६० ई०) मध्य सुमात्रा में शैलेन्द्र नरेशों के अधीन श्री विजय के महान् साम्राज्य का

उत्थान हुआ। वे बौद्ध मत की महायान शाखा के अनुयायी थे, अतः उन्होंने जावा और मलाया पर विजय प्राप्त की तथा बोरोबदुर स्तूप की स्थापना की। इस स्तूप की जिन शिलाओं पर बुद्ध का जीवन अंकित है यदि उनको एक पंक्ति में रखा जाय तो वह पंक्ति ३ मील लम्बी हो।

५ वीं शताब्दी में एक बंगाली महानाविक बुद्ध गुप्त जो चटगाँव के समीप स्थित रक्त-मृत्तिका अथवा रांगामाटी का निवासी था, बंगाल की खाड़ी पार करके मलाया पहुँच गया था। अब उसके लेख वहाँ एक बौद्ध मन्दिर के अवशेष में मिले हैं। ८४० ईसवी में शैलेन्द्र नरेश बालपुत्र देव को हम पाल (बंगाल) के महान् बौद्ध राजा देवपाल से यह प्रार्थना करते हुए पाते हैं कि नालंदा विश्वविद्यालय के पास शैलेन्द्र नरेश द्वारा बनवाये गये एक मठ का भार वहन करने के लिए वे उनकी ओर से ५ गाँव समर्पण करने की व्यवस्था करादें। नालन्दा और पूर्वी भारत की दुर्लभ काँसे की तथा पकी हुई मिट्टी की मूर्तियों की तुलना हिन्देशिया में पाई गई उसी तरह की मूर्तियों से की गयी है। चीनी बौद्ध यात्री फ़ाहयान (४०० ई०) तथा इत्सिंग (७०० ई०) आदि चीन से हिन्देशिया होकर ही आते जाते थे। ११ वीं शताब्दी में प्रसिद्ध बंगाली साधु अतिस दीपंकर ने तिब्बत जाने से पहले सुमात्रा-जावा के विश्वविद्यालय में १० वर्ष बिताये।

इसके साथ-साथ ब्राह्मण संस्कृति और कला भी हिन्देशिया के सांस्कृतिक जीवन को सम्पन्न बना रही थी। ९ वीं शताब्दी का प्रसिद्ध प्राम्बानन मन्दिर जो जोगजाकार्ता के पूर्व में स्थित है इसका साक्षी है। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं के मन्दिर हैं। बोरोबुदुर के बुद्ध-जीवन चित्रों की शैली पर यहाँ रामायण की घटनाओं के आधार पर सुन्दर चित्र अंकित हैं। पूर्वी जावा के कलाकारों को रामायण से बड़ी स्फूर्ति मिली है तथा १३ वीं शताब्दी के बन्दारन मन्दिर में रामायण और कृष्णायन उभरी हुई नक्काशी की मूर्तियों द्वारा चित्रित हैं। मध्यकाल के जावा के कलाकारों ने उभरी हुई नक्काशी से चमड़े की बनी कठपुतलियाँ बनाने की कला का विकास किया। कठपुतलियों के खेल द्वारा आज भी हजारों हिन्देशियाइयों का मनोरंजन होता है। इस प्रकार के खेल की कहानियों में भारतीय एवं हिन्देशियाई नायक-नायिकाओं तथा देवताओं का चित्रण होता है। शताब्दियों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप भारतीय और हिन्देशियाई कथाएँ एवं किंवदन्तियाँ घुल-मिल कर एकाकार हो गयी हैं।



बोरोबुदुर का प्रसिद्ध मंदिर→

चोल राजा (८८८—१२६७) न केवल स्थल युद्ध में वरन् समुद्री युद्ध में भी दक्ष थे। राजराजा प्रथम ने (९८५-१०१४) एक शक्तिशाली जलसेना संगठित करके लंका पर चढ़ाई की और यद्यपि वह शैव था उसने श्री विजय साम्राज्य के एक राजा द्वारा नागपट्टम में बनवाये एक बौद्धमठ को सम्पत्ति समर्पित की जहाँ अनेक मूल्यवान कांसे की मूर्तियाँ मिली हैं (जिनका काल ११ वीं से १५ वीं शताब्दी के बीच का है)। इससे पता चलता है कि १५ वीं शताब्दी तक हिन्देशियाई तीर्थयात्री भारत आते थे।



जावा की एक महिला

राजा राजेन्द्र चोल ने (१०१४-१०४२) अपनी जलसेना के बल पर बर्मा और मलाया से भेंट प्राप्त की। उसकी जलसेना और भी आगे बढ़ी तथा श्री विजय के राज्य से भी भेंट लाई।

९१५ ई० के लगभग इस्लाम ने भारत से हिन्देशिया में प्रवेश करना आरम्भ किया। इस समय कला का केन्द्र मध्य जावा से हट कर पूर्वी जावा हो गया जहाँ सिंहसारी वंश (१२९०-१२९२) के राजकाल में मूर्ति शिल्प के सर्वोत्तम उदाहरण प्रज्ञा पारमिता के सुन्दर नारी-सौन्दर्य की सृष्टि हुई। यह मूर्ति डच विजेताओं ने जावा से ले जाकर हालैण्ड के लीडन स्थित नृवंशविद्या के संग्रहालय में रख दी। डच विजय से बहुत पहले जब कि अन्तिम हिन्देशियाई साम्राज्य मायापाहित (१२९४-१४७८) फैला हुआ था, मुसलमान व्यापारी और नाविक हिन्देशिया आने लगे थे। अरब, फ़ारस तथा इस्लामी दुनिया के दूसरे हिस्सों से ये निडर नाविक और व्यापारी अरब सागर को पार करते

हुए मालाबार और लंका तक पहुँच जाते थे और इससे भी आगे मलाया और हिन्देशिया जाने का भी साहस करते थे। महान् मंगोल शासक कुबला खाँ (१२१४-१२९४) के अधीन युनान सूबे के सूबेदार सय्यद-ए-एजिल (१२७४-१२७९) ने प्रथम बार मसजिदें बनवाईं। कुबला खाँ ने प्रसिद्ध इटालियन यात्री मार्को पोलो (१२७५-१२९२) को भी अपनी सेवा में रखा जिसने कि पूर्वी एशिया का विस्तृत ज्ञान यूरोप को दिया। चाओ-जु-कुआ (१२५५) द्वारा दी गई मार्गसूचक पुस्तक पर कुतुबनुमा अंकित है जिसका आविष्कार प्रथम बार चीनियों ने किया था।

१२९६ में एक मंगोल राजदूत मंडल चोउ-ता-क्वान के नेतृत्व में कम्बोडिया आया और उसने हिन्देशियाई प्रदेशों के विषय में बहुमूल्य समाचार सामग्री उपलब्ध की। मोराको के प्रसिद्ध अरब यात्री इब्न-बतूता (१३४५) ने, जो मुहम्मद तुग़लक की सेवा में था तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया का भ्रमण कर चुका था, इस बात का विस्तार से वर्णन किया है कि जावा, मलाया, लंका, भारत, फ़ारस तथा पश्चिमी देशों को मसाले, मोती और जवाहरात के बदले में चीनी रेशम तथा चीनी मिट्टी के बर्तन जहाज़ द्वारा भेजे जाते थे।

१५ वीं शताब्दी में मुसलमानों ने हिन्देशिया के हिन्दू राज्यों को जीत कर उन्हें बालीद्वीप की ओर खदेड़ दिया। मुस्लिम व्यापार का मुख्य केन्द्र मलक्का था किन्तु उसका प्रसार फ़िलिपाइन तक समस्त मलाया में था। लगभग २० राज्यों ने इस्लाम को राज्यधर्म के रूप में स्वीकार कर लिया और हिन्देशिया में देमाक और मदारम के मुस्लिम साम्राज्यों की खूब समृद्धि हुई। इस तरह हिन्देशिया की जनसंख्या का बहुमत इस्लाम धर्म का अनुयायी हो गया।

हिन्देशिया में, विशेषकर जावा में सांस्कृतिक मेल का एक दुर्लभ उदाहरण मिलता है जहाँ पहले की हिन्दू-बौद्ध कला और संस्कृति का सामंजस्य इस्लामी सभ्यता से हो गया है। हिन्देशिया में यह बात बड़े सुन्दर ढंग से प्रकट होती है कि इस्लाम आवश्यकीय रूप से अलग-थलग नहीं वरन् संस्कृति के क्षेत्र में वह संयोजन एवं समन्वय का समर्थक भी हो सकता है। यहाँ भौतिक संस्कृतियों के प्रति न केवल धार्मिक सहिष्णुता वरन् सहानुभूतिपूर्वक सहयोग दिखाई देता है। कला-कार्य में बाधा डाली विदेशी (पश्चिमी) धर्म के आक्रमण ने तथा १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में आने वाले पुर्तगालियों के शोषण ने। वास्को-द-गामा ने १४९८ में भारत की भूमि पर पैर रखा और पुर्तगालियों ने अलबुकर्क के नेतृत्व में पूर्वी भारत के मसाले के व्यापार केन्द्र मलक्का (१५११) पर अधिकार किया। वे माकाओ (१५५७) में बस गये और एशिया में साम्राज्य निर्माण के प्रयत्न करने लगे तथा ब्रिटिश और डच व्यापारियों के लिए लिसबन की मसाले की मंडी बन्द करके व्यापार में एकाधिकार जमाने लगे।

१७ वीं शताब्दी में आक्रमणकारी डचों ने अम्बोयना पर अधिकार करके (१६०५) में तथा बटाविया में एक कारख़ाना स्थापित करके १६१९ में हिन्देशिया से पुर्तगालियों को हटा दिया। अंग्रेज़ों ने स्याम और पूर्वी द्वीप समूह से व्यापार करना छोड़ दिया (१६२३) और



जावा का एक नृत्य

पुर्तगाली जापान से (१६३९) निकाल दिये गये। इस तरह पूर्वी द्वीप-समूह पर डच लोगों का प्रभुत्व हो गया और २ शताब्दी के लिए सबसे अधिक घने बसे हुए और सम्पन्न द्वीप जावा पर उनका एकाधिकार हो गया। १६६६ में डच लोगों ने सेलेबिस का द्वीप पुर्तगालियों से छीन लिया और १६८३ में तेरनात पर अधिकार कर लिया। अंग्रेज़ों ने १६८५ में बेंगकुलेन (सुमात्रा) में एक कारखाना खोला किन्तु १८ वीं शताब्दी में डच लोगों का ही बोलबाला रहा। डच कम्पनी का अत्याचार और शोषण बढ़ता गया तथा व्यापार को मुट्ठी में करने के लिए कम्पनी ने जावा पर कड़ा नियंत्रण रखा। १७६९ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उत्तरी बोर्नियो में कुछ शाखाएँ खोलीं किन्तु वह प्रयत्न सफल नहीं हुआ।

१७८१ में हालैण्ड इंगलैंड के विरुद्ध सशस्त्र हुआ तो ब्रिटेन ने सुमात्रा के पश्चिमी तट पर स्थित सारे डच उपनिवेशों को जीत लिया। यद्यपि १७८३ में पेरिस की सन्धि के अनुसार ये डच उपनिवेश लौटा दिये गये किन्तु ब्रिटेन को समस्त डच पूर्वी द्वीप समूह में व्यापार करने का अधिकार मिल गया। फ्रांसीसी क्रान्तिकारी युद्ध छिड़ने पर ब्रिटेन ने फिर सुमात्रा और तेरनात पर अधिकार कर लिया (१७९५-९६) तथा १७९८ में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गई।

१८०८ में हालैण्ड ने पश्चिमी जावा में बानराम पर अधिकार कर लिया तथा समस्त डच उपनिवेशों की पुनर्व्यवस्था करने के लिए एक मिशन भेजा जिससे कि क्रमशः हिन्देशिया के राजाओं और सामन्तों के अधिकार कम कर दिये जायें। नेपोलियन के युद्धों के दौरान में एक ब्रिटिश बेड़े ने बटाविया पर अधिकार कर लिया तथा जावा को अपने अधीन कर लिया। लार्ड मिन्टो ने स्वयं एक टुकड़ी का नेतृत्व किया था और कदाचित नेपोलियन ने जैसा मिस्र में किया था उसकी नकल करते हुए बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के कुछ वैज्ञानिकों और विद्वानों को मलाया भेजा जिन्होंने समुद्र पार कमीशन के रूप में मलक्का में अपनी बैठक की। इस महत्त्वपूर्ण बैठक की कार्यवाही सयत्न सुरक्षित है। जब मैं सोसायटी का जनरल सेक्रेटरी था तब मैंने उसे देखा था। सर स्टेमफोर्ड रेफ़ेल्स (१८११-१८१६) के शासन में, जिन्होंने जावा पर एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी है, डच शासन प्रणाली का नाम निशान मिट गया। किन्तु नेपोलियन के पतन के बाद यूरोपियन शान्ति सन्धियों के अनुसार सुमात्रा और जावा हालैण्ड को

लौटा दिए गये (१८१४-१६)। १८२४ में अंग्रेज़ों ने मलक्का के बदले बैंगकुलेन (सुमात्रा) डच लोगों को देकर अपना अधिकार पूरी तरह हटा लिया।

इस संक्रान्तिकाल में जावा निवासियों का डच के विरुद्ध प्रथम विद्रोह हिन्देशियाई नेता दीपो नेगोरा के नेतृत्व में १८२५-३० में हुआ। डचों ने इस प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन को निर्दयतापूर्वक दबा दिया और अपना नियंत्रण द्वीपसमूह पर कड़ा करने लगे। किन्तु हिन्देशियाई वीरों ने, जो कदाचित् विदेशी शासन उलटने के लिए प्रयत्न करने वाले प्रथम एशियाई थे, डच साम्राज्यवादियों को बहुत नुक़सान पहुँचाया और भारत के १८५७ के विद्रोह से कुछ पहले और बाद में १८४६ तथा १८८८ में फिर इनकी नाक में दम किया। हिन्देशियाई विद्रोहों का कारण यह था कि प्रथम विद्रोह के बाद डच साम्राज्य ने १८३० में एक बहुत अन्यायपूर्ण "बलपूर्वक खेत जोतने की" शोषक प्रणाली हिन्देशियाई लोगों पर लाद दी जिसके अनुसार हिन्देशिया के निवासियों को डच सरकार के साथ एक समझौते में बंधना पड़ता था जो स्वयं मूल्य निर्धारण करती थी और निर्दयतापूर्वक उनका शोषण करती थी। १८३६ में बाली के हिन्दू राजाओं को डचों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी किन्तु विद्रोह चलते रहे। १८४१ में एक ब्रिटिश साहसी योद्धा जेम्स ब्रुक ने ब्रूनेई के सुल्तान को मजबूर कर दिया कि स्थानीय लड़ाइयों में सैनिक सहायता देने के बदले में सुल्तान उसे पूर्वी बोर्निओ (सारावाक) दे दे। १८४७ में अंग्रेज़ों ने सुल्तान से लाबोन द्वीप (उत्तर-पश्चिमी बोर्निओ का) ले लिया और वहाँ समुद्री अड्डा बना लिया। १८५६ में डच और पुर्तगालियों ने आपस में तिमोर तथा उसके पास के द्वीपों को बाँट लिया।

लगता है कि तेल के एक विशाल स्रोत के रूप में बोर्नियो की ख्याति अमेरिका तक पहुँच गई थी क्योंकि अमेरिका की सरकार को हम सुल्तान से एक सन्धि करते हुए पाते हैं जिसके फल स्वरूप 'अमेरिकन ट्रेडिंग कम्पनी आफ़ बोर्नियो' को कुछ भूमि दी गई। १८७० में डच राज्य ने जावा में चीनी के सम्बन्ध में एक नया कानून बनाया तथा एक कृषि कानून भी बनाया जिसके फलस्वरूप खेत की जुताई की प्रणाली द्वारा जो प्रतिबन्ध लगे थे वे कुछ कम हो गये और व्यक्तिगत खेती में क्रमशः वृद्धि होने लगी। १८८१ में अमेरिकन कम्पनी की सम्पत्ति को एक संयुक्त अमेरिकन-अंग्रेज़ी कारपोरेशन ने ले लिया और उसे ब्रिटिश सरकार से अधिकार पत्र मिल गया तथा ब्रुनेई और सुलु द्वीपसमूह के सुल्तानों से नयी रियायतें भी मिलीं। हालैण्ड और स्पेन वालों ने व्यर्थ ही इस नयी कम्पनी का विरोध किया जिसका कि समस्त उत्तरी बोर्नियो पर अधिकार था। जून १८६१ में संयुक्त सीमा कमीशन ने सन्धि द्वारा बोर्नियो में ब्रिटिश और डच उपनिवेशों की सीमाएँ निश्चित कर दीं।

इधर राजनीतिक और व्यापारिक नीति के पर्दे में अनेक अवांछनीय घटनाएं हो रही थीं तो उधर जावा में और उत्तरी सुमात्रा में भी विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। कई वर्ष तक यहाँ के निवासियों ने वीरतापूर्वक विदेशी सरकार का सामना किया। सुमात्रा में "शान्ति स्थापना" का कार्य—जो कि वास्तव में उसकी स्वतन्त्रता की क़ब्र थी—दिसम्बर १६०७ में समाप्त हुआ। किन्तु इस स्वतन्त्रता आन्दोलन ने बाली निवासियों को भी स्फूर्ति दी जिनके विद्रोह को डच राज्य ने निर्दयतापूर्वक दबा दिया और वहाँ १६०८ में अपना सीधा राज्य स्थापित कर लिया।

इस प्रकार प्रायः एक शताब्दी तक असंगठित किन्तु वीर हिन्देशियाई डचों द्वारा अपमान, यंत्रणा एवं शोषण सहन करते रहे। १६ वीं शताब्दी में वे वीरतापूर्वक लड़ते रहे किन्तु विजय प्राप्त नहीं कर सके। हिन्देशिया के स्वतन्त्रता आन्दोलन को द्वितीय विश्व युद्ध की आकस्मिक घटना नहीं समझना चाहिए। यह तो पिछले आन्दोलनों का, जिनका मैंने यहाँ संक्षेप में वर्णन किया है, चरम उत्कर्ष और स्वाभाविक परिणाम है। १६१६ में डच सरकार ने आन्दोलन का असर कम करने के लिए एक व्यवस्थापिका सभा बनाई जिसमें २४ निर्वाचित और २४ नामज़द सदस्य थे। इनमें हिन्देशियाई केवल २५ थे किन्तु डच ३० और ५ अन्य राष्ट्रों के लोग थे। इस सभा को केवल सलाह देने का अधिकार प्राप्त था। १६२२ में इसने वास्तविक अर्थों में व्यवस्थापिका सभा का कार्य शुरू किया जब कि सरकार के आर्डिनेन्सों के लिए इसकी अनुमति आवश्यक कर दी गई। १६२५ में शासन व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किये गये और १६२६ में यह घोषणा की गई कि सभा के ६० सदस्यों में ३० हिन्देशियाई होंगे।

जावा और बाली में जब १६२४ में मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला तो मुझे तभी अनुभव हुआ था कि हमारे हिन्देशियाई भाई अपनी स्वतन्त्रता के लिए अन्तिम युद्ध करने के लिए तैयार हो रहे हैं। राष्ट्रीय स्वाधीनता दल की शक्ति दिन पर दिन बढ़ती गयी और इसने २१० वर्ष के अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की। १६३७ में व्यवस्थापिका सभा में सर्वसम्मत प्रस्ताव के रूप में उनकी आशा भविष्य कथन ही मालूम होती है क्योंकि १६४७ में जब मुझे डाक्टर सुल्तान शहरियार और उनके साथियों से एशियाई सम्मेलन के अवसर पर मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो मैंने देखा कि समस्त भारत स्वतन्त्र हिन्देशिया का समर्थन कर रहा है।

शरत्पूर्णिमा

दिवाकर

नील गगन में चीर तिमिर-घन, मुस्काता यह कौन ?
मन्द-मन्द मृदु-मधुर रश्मि-छवि बरसाता यह कौन ?

★

मलिन मेघ से रहित आज यह निर्मल नभ निस्सीम,
लुटा रही है प्रकृति-परी सुषमाएँ आज असीम।
नहीं आज मण्डूक-निकर का वह उत्कट कटु शोर,
बदली घिरी न अब वह रजनी रही भयावह घोर।
हरित-वसन धारण कर धरती रही स्वयं ही झूम,
उगे शस्य श्यामल धरती के रहे सरस पद चूम।
हर सिंगार झर रहे, सुरभि में सने समीर विभोर,
दिशा धवल, आकाश धवल, है धवल-धवल सब ओर।
खौल-खौल कर उठता, गिरता सागर बारंबार,
पहुँच सका फिर भी न अभी तक हँसते शशि के द्वार।
अमित अश्रु से आर्द्र कर गई वर्षा भू के गात,
आज लुटाती हँसी विश्व में यह पूनम की रात।
अश्रु पोंछ, आओ हँस लें यह हँसने का त्योहार,
व्योम-बीच यह हँसी-खुशी की लगी लखित बौछार।
प्राणों में रह-रह सिहरन भरता जाता यह कौन ?
पुलकाता तृण-तृण, कण-कण को, लो, आता यह कौन ?

★

नील गगन में चीर तिमिर-घन, मुस्काता यह कौन ?
मन्द-मन्द मृदु मधुर रश्मि-छवि बरसाता यह कौन ?

★ ★

दीप

योगेन्द्र

मेरे विकल दीप !

थोड़ी निशा शेष, थोड़े सितारे,
नभ में रहे खेल नभ के दुलारे,
लेकर व्यथा की विमल ज्योति जल दीप !

तम आवरण में छिपा विश्व भयभीत,
सोये अधर बीच खग के मधुर गीत,
सुरभित समीरण लहरियाँ अचल दीप !

आगत उषा की अमल अर्चना में,
दो लघु-किरण-भेंट, शुभ-कामना में,
तुम हो अमर-ज्योति के कण सजल दीप !

सोवियत् विज्ञान . . .

—उरयालोवस्काया

सोवियत् क्रान्ति के पहले रूस में विज्ञान का काम मास्को तथा विश्वविद्यालय वाले कुछ बड़े-बड़े शहरों में होता था। अक्टूबर की क्रान्ति ने लोगों की रचनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित होने का अवकाश दिया; इस कारण सोवियत् संघ के सभी प्रजातन्त्रों तथा देश के दूर-दूर के भागों में विज्ञान का काम तेज़ी के साथ किया जाने लगा। इस समय सभी प्रजातन्त्रों में या तो अपने विज्ञान परिषद् हैं या अखिल संघीय विज्ञान परिषद् की शाखाएँ।

दूसरे महायुद्ध के समय में देश की वैज्ञानिक संस्थाएँ बड़ी सहायक सिद्ध हुईं। उदाहरणार्थ विज्ञानपरिषद् की भूगर्भशास्त्र की संस्था ने अनेक स्थानों पर लोह तथा अलोह धातुओं की खोज की। इसी कारण निकोपोल के मैंगनीज़ की कमी कज़ाकस्तान ने पूरी कर दी। नए लोहे की खोज के कारण धातु संशोधन के नए कारख़ाने बनाए जा सके। विज्ञान-परिषद् की शाखा के वैज्ञानिकों ने कई ऐसे अनुसंधान किए जिनके कारण कोयले, ताँबे, आलमुनियम, निकल इत्यादि की उत्पत्ति बढ़ाई जा सकी। कुछ नए तेल वाले प्रान्तों का विशेष अध्ययन किया गया और तेल निकालने के तरीकों में सुधार सुझाए गए। उद्योग-धन्धों तथा चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले अनेक पदार्थ सोवियत् संघ के दूर-दूर के भागों में खोज निकाले गए।

युद्ध के बाद के वर्षों में केन्द्रीय विज्ञानपरिषद् की शाखाओं की संख्या बढ़ती ही गई। इस समय इसकी छः शाखाएँ हैं और सात अनुसन्धान के केन्द्र। ये शाखाएँ यूराल, पश्चिमी साइबेरिया, तुर्कमानिया, किर्गीज़िया, कज़ाकस्तान, ताज़िकिस्तान और कज़ाक में हैं; और अनुसन्धान के केन्द्र सुदूरपूर्व, कौमी प्रजातन्त्र, करेलियन-फ़िनिश प्रजातन्त्र, मोल्डेवियन प्रजातन्त्र, कोला प्रायद्वीप, दग़िस्तान प्रजातन्त्र तथा सखालीन में हैं।

विज्ञानपरिषद् की शाखाओं का काम अपने अन्तर्गत अनेक अनुसन्धानिक केन्द्रों का नियन्त्रण करना है; और अनुसन्धान केन्द्रों का काम यह होता है कि वे किसी प्रदेश की प्राकृतिक सम्पत्ति, अर्थ-व्यवस्था तथा संस्कृति का अध्ययन करें।

सब मिलाकर अनुसन्धानिक संस्थाओं की संख्या है ३०, प्रयोग-शालाओं की ८०, पौधों के विभाग की ७ इत्यादि। इन संस्थाओं में लगभग ढाई हज़ार वैज्ञानिक और शिष्य काम करते हैं। इन संस्थाओं द्वारा किए गए अनुसन्धानों में अनेक बहुत प्रयोगात्मक महत्व रखते हैं। अधिकांश अनुसंधानों का उद्देश्य किसी विशेष प्रान्त की विशेष समस्याएँ सुलझाना होता है। उदाहरणार्थ विज्ञान परिषद् की शाखाओं ने यूराल की धातुओं की नसों का विशेष अध्ययन किया है; इन वस्तुओं की बनावट का अध्ययन पहली बार किया गया और दुर्लभ धातुओं का खोज की गई।

पश्चिमी साइबेरिया की शाखा के वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की मशीनें गुफ़ाओं और गोदामों में काम करने के लिए तैयार कीं; इनसे माल लादने का काम लिया जाता है। इनमें लगे हुए नए और विशेष यन्त्रों के कारण सतह में काम बड़ी उपयोगिता के साथ किया जा सकता है। सुदूरपूर्व में कोलतार का विशेष अध्ययन किया गया; इसके फलस्वरूप प्लास्टिक की उत्पत्ति में बड़ी सहायता पहुँची।

विज्ञान परिषद् की शाखाओं के वैज्ञानिकों ने सभी प्रजातन्त्रों में उनकी भूमि और पौधे सम्बन्धी नक़शे तैयार किए, औषधि के अनेक पौधों के आविष्कार ने चिकित्सालयों को यह अवसर दिया कि औषधियों की उत्पत्ति में वे स्थानीय पौधों का उपयोग कर सकें। पहाड़ों पर स्थित हरी, चरने वाली भूमि के विषय में तुर्कमेनियन वैज्ञानिक संस्था ने एक तरीका खोज निकाला है। तुर्कमेनियन और ताज़िक शाखाओं ने पशुओं की नई जातियों के पैदा करने और पुरानी, अर्थात् इस समय की जातियों में शारीरिक विकास करने के विषय में उपयोगी आविष्कार किए हैं।

पहाड़ी टैगा के केन्द्र में शाक-भाजी की खेती की ओर विशेष प्रयत्न किया गया है और इस कारण उनकी उत्पत्ति में कई गुना वृद्धि हुई। कोला के केन्द्र में फ़ासफेट के खाद्य द्रव्यों की उत्पत्ति का नया तरीका ढूँढ निकाला गया है। कज़ान को छोड़कर विज्ञानपरिषद् की सभी शाखाओं में पौधों के उपवन हैं। दो हज़ार से अधिक पौधे स्थानीय वातावरण में आज़माए जा रहे हैं; इनमें से सात सौ वातावरण के अनुकूल सिद्ध हुए हैं और इनमें से पक्की बीजें भी निकाली गई हैं। पोलर-प्रान्त में स्थित पौधों के उपवन मुरमान्स्क तथा उसके आस-पास के गांवों को हरी घास देते हैं। दूसरा और इतना ही मनोरंजक पौधों का उपवन सोवियत् संघ के दूसरे अन्त पर स्थित है; गोर्नी-बदख्शां प्रान्त में। यह पामीर उपवन है जो कि समुद्र की सतह से २,३०० मीटर ऊपर है।

विज्ञानपरिषद् की शाखाएँ भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में उपयोगी काम करती हैं। प्रजातन्त्रों में ये संस्थाएँ शब्दकोष तैयार करती हैं। स्थानीय मुहाविरों का अध्ययन करती हैं, ऊँची कक्षाओं के लिए पुस्तकें तैयार करती हैं और लोगों के साहित्य का अध्ययन करती हैं। विभिन्न स्थानों की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए इन्होंने १९४९ में १७ प्रतिनिधि मण्डल भेजे। केवल पिछले वर्ष के अन्तर्गत वैज्ञानिकों ने १,२७९ भाषण दिए और रिपोर्टें पढ़ीं। परिषद् की शाखाओं द्वारा एक वर्ष में ३४० वैज्ञानिक प्रकाशन (पुस्तकें, रिपोर्ट, लेख इत्यादि) हुए; प्रेस में छपने के लिए सब मिलाकर २,७०० वैज्ञानिक सामग्रियाँ भेजी गईं।

स्थानीय जनता में से वैज्ञानिक तैयार करने में परिषद् की शाखाओं ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। १९३४ में यूराल की विज्ञान परिषद् में सेटोवस्का नामक व्यक्ति छोटे वैज्ञानिक कर्मचारी के रूप में भरती हुआ; पर ग्यारह वर्ष बाद "डाक्टर आफ सायंस" (विज्ञान का पण्डित) की डिग्री उसको प्राप्त हुई। इस समय वह यूराल की वैज्ञानिक परिषद् की प्रेसिडियम का उपाध्यक्ष है; सोवियत् संघ के प्रमुख धातु-विशेषज्ञों में उसकी गणना होती है। तुलाडीमोर पिरवा-इलाटा यूराल विज्ञान परिषद् में १९३८ से काम कर रहा है। १९४२ में उसे स्तालिन पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। विज्ञान परिषद् की शाखाओं की विशेषता यह है कि उनमें ऐसे लोग वैज्ञानिक का काम कर रहे हैं जो अक्टूबर की क्रान्ति के पहले १०० प्रतिशत निरक्षर थे। × ×

★ ★ ★ चौपाल में ★ ★ ★

कामताप्रसाद सिंह

आन्दोलन के दिनों में जीवन फरार हो गया है। अपनी इस फरारी के समय वह खूब घूमा है। महल से लेकर झोंपड़ी तक के तमाशे उसने देखे हैं। उसने भक्तों की पूजा देखी है, नास्तिकों की घृणा देखी है, जमींदार का जुल्म देखा है, किसान की सहनशक्ति देखी है, कितने ही घरों में शादी की धूम में शरीक हुआ है, और न जाने कितनों के मरने पर उन्हें दफनाने भी गया है।

और कहीं से वह देहात के इस चौपाल में आ गया है, जहाँ पर वह चार-पाँच रोज ठहर गया है। ऐसे चौपालों में इस ज़िन्दगी की कई रातें उसने गुज़ारी हैं। पर आज सहसा वह चौपाल के बारे में सोचने लगा है।

अपने में यह चौपाल कांग्रेस का आश्रम भी है, बोर्ड और म्यूनिसिपैलिटी का मीटिंगहाल भी; सभा का मैदान भी, असेम्बली का हाउस भी, शहर का पार्क भी है और अदालत भी; यहाँ स्वयंसेवक भी आकर शरण लेते हैं, गाँव का कैसा इन्तजाम हो इसपर वाद-विवाद भी होता है, ग्राम के सुचारु प्रबन्ध के लिये कानून बन जाते हैं, थोड़ी देर बैठ कर गप्पशप्प करके लोग मन भी बहला लेते हैं और कोई कसूर करता है तो यहीं सज़ा की तजवीज हो जाती है।

नाटकघर और सिनेमा का अभाव न अखरे इसलिए गाँव के इस चौपाल में ढोलक लेकर चन्द छोकरे बैठ जाते हैं, बीच में रामायण की दो-तीन प्रतियां रख दी जाती हैं और झाँझ-करताल की ध्वनि के साथ-साथ किसी वाणी के सहारे दोहा-चौपाइयों को दुहराया जाता है। कठपुतली वाली कभी-कभी नाच दिखा कर चली जाती है और हरिकीर्तन के प्रेमी कभी-कभी कीर्तन भी कर लेते हैं।

यहाँ एक थाना भी है जहाँ लोग आकर इस्तगासा दर्ज कराते हैं। किसी को कुछ क्षति हो जाये, गाँव के अन्दर कहीं कुछ मारपीट की आशंका हो या कहीं मारपीट हो जाये तो सब यहाँ आकर बयान हो जाता है। थाने में जैसे फौती-फरारी लिखी जाती हैं वैसे ही यहाँ भी जन्म मरण का हाल रोज़-रोज़ बयान होता है।

यहाँ ज़ुबानी गज़ट भी निकलता है। गाँव का कौन नौकरी करने को कहाँ चला गया, कौन दूकान करने गया, कौन नौकरी छोड़कर चला आया यह सब भी आप आसानी से सुन सकते हैं।

यहाँ ज्योतिषियों का भी अड्डा है और देश में होनेवाली बड़ी-बड़ी घटनाओं का भविष्य कहा जाता है। किसी को गाँव में प्रसव पीड़ा हो तो यहाँ पहले ही कह दिया जाता है कि अमुक को लड़का होगा या लड़की होगी। गाँव में किसी का मुकदमा हो तो हाकिम के फैसले की एक रूपरेखा भी यहीं तैयार हो जाती है। कोई बीमार पड़े तो यहीं फैसला हो जाता है कि वह मरेगा या बचेगा।

यहाँ सफल समालोचक भी रहते हैं जो तुलसीदास की रामायण से लेकर वाल्मीकि की रामायण तक,की मरम्मत करते रहते हैं। पुराण, इतिहास, अखबार सब पर एक-एक मत दिया जाता है।

यहाँ राजनीतिक सम्मेलन भी हो जाता है और देश में कहाँ न्याय हो रहा है, कहाँ अन्याय इसकी मीमांसा भी हो जाती है।

कभी मस्ती से भरा हुआ बारहमासा, कभी-कभी बहादुरी से सराबोर आल्हा का स्वर; कभी विचित्र चित्रों से परिपूर्ण रोमांचक लोककथायें, कभी करुणामिश्रित करुण बिरहा।

स्वयं चौपाल ही शस्त्रागार भी है। एक कोने में दो सादी तथा तीन लोहबन्धी लाठियाँ, दो भाले, एक गंड़ासा और एक बर्छा रखा हुआ है।

चौपाल ही ड्राइंगरूम भी है और जो मिलने-जुलने आते हैं वे इसी में पद के मुताबिक ज़मीन, चटाई, चौकी या चारपाई पर बैठाये जाते हैं।

चौपाल ही ड्रेसिंगरूम भी है और इसी में दीवार की खूंटी पर कुर्ता और मिर्जई टंगी है, छप्पर में रस्सी के सहारे लगे बांस में जिसे सब अलगनी कहते हैं धोती टंगी है।

चौपाल ही में मन्दिर भी है और पूजा भी हो रही है: हाँ, एक आले में ठाकुर जी की मूर्ति रखी हुई है और उसी की पूजा की जाती है।

चौपाल ही में पुस्तकालय भी है। एक आले में रामायण और हनुमानचालीसा रखी है और वहीं से उठाकर उसको लोग पढ़ कर फिर वहीं रख देते हैं।

इनडोर गेम्स के लिये चौपाल ही कामन रूम है: जमीन पर बारह-गोटी, छत्तीसगोटी और पचीसी की रेखायें खींच कर लोग इन खेलों को खेल लेते हैं।

चौपाल ही में कभी-कभी खलिहान भी लग जाता है: सरसों, अजवायन इत्यादि कई चीज़ें जो कम पैदा होती हैं, चौपाल ही में रख दी जाती हैं।

चौपाल ही में पशुशाला भी है। एक गाय जिसको किसान बहुत मानता है, चौपाल ही में एक कोने में बाँधी जाती है। मतलब यह कि किसी तरह वह बराबर नज़र के सामने रहे।

और यहाँ चौपाल कभी-कभी रसोईघर का भी काम दे देती है। जब इस घर में ऐसे अतिथि आ जाते हैं जो हंड़िया के शरीक नहीं होते तो इस चौपाल ही में जहाँ गाय बँधी है उसकी बगल में उनका इन्तजाम कर दिया जाता है और वे रसोई बना लेते हैं। फिर राख फेंक दी जाती है और जमीन लीप दी जाती है।

जीवन सोच रहा है कि चौपाल भी अजीब अजायब घर है, एक पूर्ण संस्था है।

चौपाल ही में कबूतर भी पाले-जाते हैं। दीवार में एक तरफ से लेकर दूसरी तरफ तक हंड़िया बैठा दी गयी हैं और उन्हीं हंड़ियों में कबूतर विश्राम करते, अंडा देते और बढ़ते हैं। उनके घुटुरघूँ-घुटुरघूँ से चौपाल गुलज़ार रहता है।

चौपाल में कहीं न कहीं से आकर गौरैये भी रह जाते हैं। छप्पर में तिनकों के सहारे वे घोंसला बना लेते हैं। रहते हैं, और फर्र-फर्र उड़ जाते हैं।

और जीवन सोच रहा है कि वाह रे चौपाल! लेकिन फिर जीवन सोचता है कि यह चौपाल की खूबी है या चौपाल के मालिक की? या ज़रूरतों ने चौपाल के मालिक को ऐसा बना दिया कि वह सब कुछ इसी चौपाल में कर लेता है?

और जीवन सोचता है कि न तो इसमें चौपाल की तारीफ है न चौपाल के मालिक की। इसमें तारीफ है देहात की ग़रीबी की और मनोवृत्ति की।

एक तरफ शहर है जहाँ हर काम के लिये अलग कमरे हैं और एक तरफ यह चौपाल है जिसमें दुनिया भर का काम किसान को करना पड़ता है। वह चाह कर भी इसको इन कामों से बरी नहीं रख सकता। साफ करना तो दूर रहा। उल्टे उसको गन्दगी का स्वागत करना पड़ता है। वाह रे देहात की ग़रीबी?

और लोग कहते हैं कि शहर में जगह कम है इसलिये मकान छोटे छोटे बनते हैं और देहात में जगह खूब है इसलिये बड़े-बड़े।

और जीवन सोच रहा है कि कुछ दिन यहाँ और ठहरे और देहात तथा चौपाल की इस दशा में कुछ सुधार करे। पर उसे पता चला है कि पुलिस को उसका यहाँ का रहना मालूम हो गया और इसलिये अब उसका यहाँ टिकना निरापद नहीं है।

और जीवन बिना किसी को कुछ कहे एक ओर चला गया है।

विवश

पन्नालाल महतो 'हृदय'

मन मँझधार पड़ा है, जीवन तट की ओर बढ़े तो कैसे?

अगम सिन्धु की राह पकड़ जलयान ज़िन्दगी का चलता है,
सौंप तिमिर के हाथों निजको दीप जवानी का जलता है,
टूटे हुए शिखर सा बचपन लुढ़क चुका अपने विचार से,
छोड़ घाट की आशा, मन का माँझी लहरों पर पलता है,
अपना भाग्य स्वयं अपनी आँखों से व्यथा पढ़े तो कैसे?

चल कर थोड़ी दूर जवानी लगी हाँफने, लाचारी है,
बैठ गया मन ठोकर लगते, जीवन का बोझा भारी है
ऐंठ गया उगते अंकुर-सा भाव कल्पना की ज़मीन में,
अनाघ्रात बन गये कुसुम, विधि ने दी कांटों की क्यारी है,
तोड़ धर्म का बंधन जीवन अपना स्वर्ग गढ़े तो कैसे?

हँसी-रुदन की राह ज़िन्दगी की यह रेगिस्तानी मंज़िल,
करनी पड़ती पार, शीश पर है शमशीर आयु की क़ातिल,
खून पसीने का लिहाज़ करने की फुर्सत नहीं प्राण को,
एक ओर तूणीर पार्थ का, एक ओर है अदना सा दिल,
फोड़ विवशता का पहाड़ यह जीवन सूर्य कढ़े तो कैसे?

मथ कर अपना हृदय हलाहल पिया, सुधा को दान दे दिया,
अपने लिये शरीर मात्र औरों को अपना प्राण दे दिया,
स्वर की यह बाँसुरी साथ ले नन्दन वन को छोड़ चुका मैं,
अपने लिये प्रार्थना रख जग को मैंने भगवान दे दिया,
फिर दरिद्र जीवन मंदिर की सीढ़ी सम्हल चढ़े तो कैसे?
मन मँझधार पड़ा है, जीवन तट की ओर बढ़े तो कैसे?

भारतेंदु-युगीन नाटक: तुलनात्मक मीमांसा

शिवनाथ

वर्तमान युगमें हिन्दी-नाटकों का जो रूप हमारे सम्मुख विद्यमान है वह समृद्ध नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रथम युग भारतेंदु-युग में व्यवस्थित रूप से इसकी रचना का आरम्भ हुआ और तब से आज तक प्रभूत रचनाएँ हो चुकी हैं। कहा जाता है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य का प्रवर्तन नाटक-रचना से ही प्रारम्भ हुआ। परन्तु नाटक रचना के कुछ तत्त्व भारतेंदु-युग के पूर्व की कुछ रचनाओं में भी मिलते हैं। ऐसी रचनाओं में हम नाटक के अवयवों को व्यवस्थित रूप में नहीं प्रत्युत बिखरे रूप में पाते हैं। इनके व्यवस्थित रूप के दर्शन भारतेंदु-युग में ही हुए। साहित्य का लक्ष्य है रूप वा चित्र-निर्माण कर रसानुभूति उत्पन्न करना। पंडितराज जगन्नाथ की—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' और विश्वनाथ महापात्र की 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' वाली काव्य-विषयक परिभाषाओं की सार्थकता इसी रूप में सिद्ध होती है। समाज और जीवन को लेकर साहित्य सम्बन्धी गौण लक्ष्यों की बात यहाँ मैं नहीं कर रहा हूँ। अभिनेयत्व के कारण नाटक स्वतः चित्र है, अभिनय में चित्र ही तो उपस्थित किए जाते हैं। यह चित्र उपस्थित करने में अभिनय के संभार के अतिरिक्त कथोपकथन प्रधान सहायक है। अभिप्राय यह कि नाटक का मूल तत्त्व कथोपकथन है; और यह केवल इसी रूप में सही भारतेंदु-युग की पूर्व की किन्हीं रचनाओं में प्राप्त होता है। हिन्दी का नाटक-साहित्य किसी न किसी रूप में भारतेंदु-युग के पूर्व से आरम्भ होकर शैली (टेकनीक) और विषय के क्षेत्र में परिस्थितिवश कई परिवर्तन ग्रहण करता हुआ आज हमारे सम्मुख विद्यमान है। विषय और शैली की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-नाटक ने उत्तरोत्तर जो परिवर्तन ग्रहण किए हैं उनके द्वारा उसमें समृद्धि आई है। निर्माण की बहुलता की दृष्टि से भी वह समृद्ध हुआ है।

'अभावे शालिचूर्णं वा' की बात साहित्य के किसी अंग के विकास के विवरण देने में भी भली भाँति लागू होती है। साहित्यांग के विकास का विवरण प्रस्तुत करने के लिए उसके एक भी अवयव की प्राचीनता की खोज का निर्देश करने की चाल आरम्भ से ही देखी जाती है। साहित्य के किसी अंग के सम्पूर्ण अवयवों के न मिलने पर उसके एक भी अवयव के द्वारा उसकी (साहित्य के किसी अंग की) प्राचीनता की नाप तोल हम कर लेते हैं। यहाँ स्मरण यह रखना है कि साहित्यांग के प्रमुख वा प्रातिनिधिक अवयव पर हमारी दृष्टि अवश्य रहती है। हिन्दी-साहित्य में नाटक की प्राचीनता की खोज में भी यही बात दिखाई पड़ती है। सभी दृष्टियों से पूर्ण नाटक मिलने के पूर्व उसके कुछ अवयव मात्र हिन्दी-साहित्य में दृष्टिगत होते हैं, और उन्हीं के आधार पर हम हिन्दी नाटक की प्राचीनता पर विचार करते हैं। ऊपर हमने कहा है कि नाटक का प्रमुख वा प्रातिनिधिक अवयव कथोपकथन है। हिन्दी में नाटक रचना के आरंभिक काल में कुछ रचनाएँ ऐसी सम्मुख आईं जो इसी लिए नाटक कह दी गईं कि उनमें कथोपकथन मात्र था। प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक' (संवत् १६६७) और रघुराम नागर कृत 'सभासार' (संवत् १७५७) ऐसी रचनाएँ हैं। महाराज विश्वनाथसिंह कृत 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' भारतेंदु-श्री हरिश्चन्द्र की दृष्टि से हिन्दी का प्रथम नाटक था, परन्तु उसमें नाटक के सभी तत्त्वों की निहिति अच्छी नहीं है, सारी बातें केवल कथोपकथन के रूप में रखी प्रतीत होती हैं।

नाटक-रचना के इस आरंभिक काल में कुछ मौलिक और अनूदित रचनाएँ भी ऐसी प्रस्तुत हुईं जिनका संवाद पद्यमय है, इनमें गद्य का उपयोग ही नहीं किया गया है। अनाथदास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' के अनुवाद (संवत् १७२६) में अभिनय-निर्देश तक पद्य में है। इस काल के अनूदित और मौलिक नाटकों में से अत्यधिक संख्या ऐसे नाटकों की है जो पद्यमय ही हैं। यह सब पर विदित है कि भारतीय प्राचीन साहित्य में नाटक भी साहित्य माना जाता था—काव्येषु नाटकं रम्यम्। ऐसी परिस्थिति में संस्कृत के नाटकों में पद्य और गद्य दोनों का उपयोग किया गया है—पद्य का उपयोग तो अपेक्षाकृत अधिक है। हिन्दी के नाटक-रचना के आरंभिक काल में संस्कृत से ऐसी ही परम्परा मिली। इस काल में अत्यधिक रचनाएँ ऐसी निर्मित हुईं जो संस्कृत से अनूदित हैं। संस्कृत के नाटकों में गद्य-पद्य दोनों के उपयोग होने के कारण अनुवाद में भी इनका उपयोग करना पड़ा। परन्तु गद्यपद्यमय संस्कृत नाटकों के कुछ अनुवाद भी पद्य में ही हुए। इस समय 'अभिज्ञानशाकुन्तल', 'मालतीमाधव', 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'हनुमन्नाटक' आदि के अनुवाद अधिक हुए और इन अनुवादों में पद्य का उपयोग ही अधिक किया गया।

इस समय के मौलिक नाटकों में अधिक ऐसे हैं जो पद्यमय ही हैं। जैसे प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक', रघुराम नागर कृत 'सभासार', लछीराम कृत 'करुणाभरण' आदि। ऐसे नाटकों की शैली स्थूलतः वैसी ही अथवा उससे कुछ परिष्कृत समझनी चाहिए जैसी केशवदासजी की 'रामचंद्रिका' की है।

ऊपर इसका निर्देश हुआ है कि संस्कृत के नाटक गद्य और पद्य दोनों में मिलते हैं और यह परम्परा हिन्दी को भी मिली। आज हिन्दी साहित्य वालों ने संस्कृत-साहित्य का अध्ययन-मनन बंद-सा कर दिया है। परन्तु आरम्भ से लेकर इधर द्विवेदी-युग तक यह प्रवृत्ति बराबर बनी रही। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक ही था कि संस्कृत की नाटक-रचना-शैली का प्रभाव हिन्दी के नाटकों पर पड़ता। हरीराम जी कृत १—'जानकी-रामचरित नाटक', लछमण शरण (मधुकर) कृत २—'रामलीला विहार,' महाराज श्री विश्वनाथ सिंह कृत ३—'आनंद

रघुनंदन नाटक' श्री गिरिधरदास कृत ४—'नहुषनाटक' आदि में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग मिलता है। इन नाटकों में से प्रथम और द्वितीय में खड़ी बोली का प्राधान्य है और चतुर्थ में व्रजभाषा का।

ऊपर नाटक के तत्वों से पूर्णतः और अंशतः भी मुक्त जिन रचनाओं की चर्चा की गई है उनके निर्माण की कालसीमा भक्ति और रीतिकाल है। इनमें तत्कालीन विषयों में उपलब्ध वस्तुओं की सी ही वस्तुएँ गृहीत हैं। इन कालों के विषय प्रधानतः राम और कृष्ण की लीलाओं से संबद्ध हैं। शृङ्गारकाल में शृङ्गार की अभिव्यक्ति के लिए भी कृष्ण का चरित लिया गया। इन कालों में जो नाटक भी निर्मित हुए उनकी वस्तुएँ भी राम और कृष्ण की लीलाओं से ही ली गई। 'नहुषनाटक' जैसे कुछ पौराणिक नाटक भी रचे गए। वैसे तो स्थूलतः इन सभी नाटकों को हम पौराणिक नाटकों की सीमा में रख सकते हैं। इन कालों में जो नाटक अनूदित हुए वे भी राम, कृष्ण की लीलाओं से ही संबद्ध हैं। 'हनुमन्नाटक' की वस्तु रामलीला के ही अन्तर्गत आती है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' जैसे नाटक पौराणिक हैं।

श्रीरघुराम नागर कृत 'सभासार' (संवत् १७५७) जैसी रचनाओं के विषय अवश्य ही ऐसे विषयों से भिन्न हैं। 'सभासार' कथोपकथन मात्र है और वह भी पद्य में। इसमें युगल आदि के लक्षण वर्णित हैं। इस रचना में खड़ी बोली और उसमें भी तत्सम शब्दों का प्राधान्य है।

एकाध नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' के ढंग का भी मिलता है, जैसे व्यास जी के शिष्य देव का रचा हुआ 'देवमायाप्रपंच नाटक'। इसका रचना-काल विक्रम की सत्रहवीं शती का मध्य समझना चाहिए।

इन नाटकों का विषय प्रधान रूप से प्रेम और उत्साह ही रहा। शृङ्गार और वीर रस की अभिव्यक्ति ही नाटकों में प्रधान रूप से हुई है। संस्कृत के नाटकों का स्वरूप भी रस की दृष्टि से ऐसा ही रहा।

भारतेन्दु-युग के पूर्व के नाटकों पर विचार करते हुए इसका निर्देश किया गया है कि आधुनिक साहित्य का प्रवर्तन नाटकों से ही माना जाता है और यह भारतेन्दु-युग में घटित हुआ। यह तो नहीं कहा जा सकता कि भारतेन्दु युग में नाटकों का पूर्ण विकास हो गया और उसके सभी तत्वों का समुचित उपयोग उस युग में होने लगा, परन्तु इस विषय में इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि पहले की अपेक्षा भारतेन्दु युग में इसकी रचना शैली, विषय आदि सभी दृष्टियों से नवीनता और उत्कर्ष का सन्निवेश हुआ। यहीं पर यह भी कह दूं कि भारतेन्दु-युग में नाटकों की जितनी रचनाएँ प्रस्तुत हुईं उतनी और किसी युग में नहीं। भारतेन्दु-युग के छोटे-बड़े सभी साहित्यकारों ने नाटक की रचना की। इनके नाटकों में कितने शिष्ट हैं और कितने नहीं, यह दूसरी बात है। अभिप्राय यह कि भारतेन्दु-युग में नाटकों की बाढ़ सी आ गई, और इस युग में जिन नाटकों को हम पूर्णतः शिष्ट नहीं कह सकते उनमें भी नाटकों के अल्पाधिक जो भी तत्व हैं वे अपने पूर्व-युग की अपेक्षा किसी न किसी रूप में विकसित ही दृष्टिगत होते हैं।

यह सभी पर प्रकट है कि भारतेन्दु-युग में गद्य साहित्य—सच्चे साहित्य—के निर्माण के हेतु गृहीत हुआ, अर्थात् इस युग के आते-आते वह विकास की इतनी मंजिलें पार कर चुका था कि अब उसमें साहित्य निर्मित हो सके। हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि भारतेन्दु-युग तक आकर हिन्दी का गद्य पूर्णतः विकसित हो चुका था, बात ऐसी तो नहीं है, उसका उत्तरोत्तर विकास आगामी युगों में भी हुआ। भारतेन्दु-युग में इतने विकसित गद्य के प्राप्त हो जाने के कारण उस युग के नाटककारों को नाटक-रचना में कई दृष्टियों से स्वाभाविकता का सन्निवेश करने का अवसर मिला। मतलब यह कि भारतेन्दु-युग के पूर्व के नाटकों में पद्य को जो आधिक्य मिलता था, या यों कहें कि सारे नाटक में ही जो पद्य को प्रतिष्ठा मिलती थी वह भारतेन्दु-युग में कम हुई। भारतेन्दु-युग के सभी नाटकों में स्वाभाविकता को दृष्टि-पथ में रख कर गद्य और पद्य की समुचित व्यवस्था की गई; यह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि पद्य का साम्राज्य नाटकों से उठ गया। हाँ, कुछ नाटकों में पद्य का अनपेक्षित आधिक्य अवश्य मिलता है। अभिप्राय यह कि गद्य का उपयोग नाटकों के लिए उस युग में आवश्यक समझ कर उसका ग्रहण किया गया।

नाटक ही नहीं प्रत्युत साहित्य के सभी अंगों में समुचित स्वाभाविकता और नवीनता की संनिहिति की ओर भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र की दृष्टि भलीभांति लगी हुई थी। भारतेन्दु-युग ऐसा युग था कि उसमें हिन्दी-साहित्य का सम्पर्क अंग्रेजी-साहित्य और इस साहित्य से प्रभूत रूप से प्रेरणा ग्रहण करने वाले बंगला साहित्य से हुआ। भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र की दृष्टि नवीनता के विचार से इन दोनों साहित्यों पर रहती थी। 'नाटक' (संवत् १९४०) नामक प्रबन्ध में वे लिखते हैं—'आजकल यूरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंग देश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं।' इस तरह के नवीन नाटकों में रचना-शैली, भाषा आदि की दृष्टि से स्वाभाविकता का जो सन्निवेश हुआ उसकी संस्थिति हिन्दी-नाटकों में भी देखना चाहते थे। उन्होंने इस तरह की बात 'नाटक' नामक प्रबन्ध में एकाधिक स्थलों पर कही है—पात्रों का परस्पर कथोपकथन—पात्र गण आपस में जो बातें करें उसको कवि निरे काव्य की भांति न ग्रथित करे—यथा नायिका से नायक साधारण काव्य की भांति 'तुम्हारे नेत्र कमल हैं, कुच कलश हैं,' इत्यादि न कहें। परस्पर वार्ता में हृदय के भाव के बोधक वाक्य ही कहने योग्य हैं। किसी मनुष्य वा स्थानादि के वर्णन में लम्बी-चौड़ी काव्य रचना नाटक के उपयोगी नहीं होती। इस प्रकार के विचारों पर भारतेन्दु-युग के सजग नाटककारों की दृष्टि रहने के कारण उस युग में पद्यमय कथोपकथन अथवा नाटक में अस्वाभाविक रूप से काव्य का त्याग उचित ही था।

नाटक-रचना शैली में अन्य प्रकार की नवीनता की स्थापना भी भारतेन्दु-युग में की गई। भारतेन्दु-युग और विशेषतः उस युग के नेता भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र ऐसे अनाग्रही थे कि उसमें स्वदेश, विदेश, नवीन, प्राचीन, सभी देशों तथा कालों की उपयोगी वस्तुएँ

बिना हिचक के ग्राह्य मानी जाती थीं। उपर्युक्त प्रबन्ध में ही उन्होंने लिखा है—'वर्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल (प्राचीन काल) की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे संप्रति प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्य काव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता।' आगे कहा है—नाटकादि दृश्य काव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करे यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो सब प्राचीन रीति या पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहण होंगी।' इस प्रकार हम देखते हैं कि वे 'मज्झिम मग्ग' पर चलने का निर्देश कर रहे थे। नवीन, प्राचीन-स्वदेशी, विदेशी सभी उपयोगी तत्त्वों के वे आग्रही थे। उस युग के साहित्यकारों में इस प्रकार की प्रगतिशीलता के भाव विद्यमान थे और उन्होंने इनके अनुसरण करने का यत्न भी किया, फिर भी उनमें प्राचीनता के प्रति विशेष झुकाव लक्षित होता है। भारतेन्दु-युग के नाटकों में अतिकाव्यत्व, पद्यका आधिक्य तथा ऐसे अन्य अस्वाभाविक तत्त्व, जिनका सम्बन्ध प्राचीनता से भी था, विद्यमान ही थे। भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र ने कहा कि 'अब नाटक में कहीं 'आशीः' प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी', कहीं 'विलोभन', कहीं 'सफेट' कहीं 'पंचसन्धि' वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भांति हिन्दी नाटक में इनका अनुसंधान करना वा किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रख कर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है क्योंकि प्राचीन लक्षण रख कर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ जाता है।' एक स्थान पर यह भी कहा है कि'...नांदी रचनादि विषय के नियम हिन्दी में प्रयोजनीय नहीं।' परन्तु उस युग के प्रायः सभी नाटककारों ने इन तत्त्वों पर दृष्टि रखी है। भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र कृत 'विद्यासुन्दर', लाला श्रीनिवास कृत 'रणधीर-प्रेममोहिनी', श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या कृत 'प्रह्लाद नाटक', श्री प्रताप नारायण मिश्र कृत 'कलि-कौतुक रूपक' आदि पाँच, सात ही ऐसी रचनाएँ मिलती हैं जिनमें 'प्रस्तावना' नहीं है। 'रणधीर-प्रेम-मोहिनी' में नांदी आदि भी नहीं है। भारतेन्दु-युग के नाटककारों की दृष्टि प्राचीनता पर पूर्व युग की अपेक्षा कम थी, इसमें सन्देह नहीं।

भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र के 'नाटक' नामक प्रबन्ध को देखने से विदित होता है कि उन्होंने ऐसे नाटकीय तत्त्वों का निर्देश भी किया है जिनके विषय में आज के नाटककारों का ध्यान भी आकृष्ट किया जाता है। कथा की भांति नाटक की वस्तु में भी औत्सुक्य वा कौतूहल की संस्थिति, जिसके द्वारा श्रोता, पाठक और दर्शककी वृत्ति आद्योपांत नाटक की ओर लगी रहे; पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग, अर्थात् पात्र की शिक्षा-दीक्षा गुण, स्वभाव आदि को दृष्टि में रखकर कथोपकथन तथा उसकी भाषा की नियोजना; अल्प संवाद में अधिक भाव विचार की निहिति आदि नाटकीय तत्त्वों का निर्देश उन्होंने किया है। इस प्रकार विदित होता है कि भारतेन्दु-युग में सिद्धान्त रूप से सही अपने पूर्व युग की अपेक्षा नाटक-रचना के तत्त्वों की दृष्टि से कहीं अधिक सजगता विद्यमान थी, कम से कम इस ओर लोगों की दृष्टि थी या लाई गई। परन्तु नाटक-रचना के सिद्धान्तों का व्यवहार कम देखा गया।

पूर्व युग की भांति भारतेन्दु-युग में भी नाटक के क्षेत्र में अनुवाद का सिलसिला चलता रहा। हमने देखा कि पहले संस्कृत नाटकों के ही अनुवाद हुए। भारतेन्दु-युग में संस्कृत के अतिरिक्त बँगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद भी प्रस्तुत हुए। स्वयं भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र बहुत ही कुशल अनुवादक थे। उन्होंने अपने द्वारा अनूदित रचनाओं में मूल रचनाओं की अपेक्षा कम विशिष्टता नहीं स्थापित की। अपने अनुवादों में उन्होंने भाव की स्पष्टता के लिए पद्यों को घटाया बढ़ाया भी है। 'रत्नावली', 'पाखण्डविडम्बन', 'धनंजयविजय', 'कर्पूरमंजरी' और 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद संस्कृत से किया गया है। 'पाखंडविडंबन' 'प्रबोधचन्द्रोदय' के तीसरे अंक का गद्य-पद्यमय अनुवाद है। श्री प्रतापनारायण मिश्र ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद 'संगीत-शाकुन्तल' नाम से किया। इसमें भी भाव की स्पष्टता पर ही विशेष दृष्टि रखी गयी है। 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' वाले अनुवाद पर नहीं। इसमें गीति का प्राधान्य है।

भारतेन्दु-युग में संस्कृत-साहित्य की भांति बंगला-साहित्य की ओर भी लोगों की दृष्टि विशेष थी और उसे लोग बहुत ही आदर की दृष्टि से देखते थे। 'नाटक' नामक प्रबन्ध में एक स्थान पर भारतेन्दु ने कहा है—"अपनी सम्पत्तिशालिनि ज्ञानवृद्धा बड़ी बहन बंगभाषा के अक्षय रत्नभांडागार की सहायता से हिन्दी भाषा बड़ी उन्नति करे।' ऐसी परिस्थिति में बंगला-साहित्य से हिन्दी में प्रभूत अनुवाद हुए और साहित्य के सभी अंगों की रचनाओं के अनुवाद हुए। बंगला से नाटक अनूदित हुए। श्री रामकृष्ण वर्मा ने बँगला के तीन नाटकों का अनुवाद किया, जिनके नाम हैं—'वीर नारी', 'कृष्ण कुमारी नाटक' और 'पद्मावती'। ये नाटक पौराणिक और ऐतिहासिक हैं।

श्री मथुराप्रसाद उपाध्याय ने शेक्सपियर के 'मैकबेथ' का अनुवाद 'साहसेंद्र-साहस' के नाम से किया। श्री गोपीनाथ पुरोहित ने शेक्सपीयर के 'ऐज़ यू लाइक इट' और 'रोमियो ऐण्ड ज्यूलियट' का अनुवाद 'प्रेम लीला नाटक' नाम से और 'मर्चेण्ट ऑव वेनिस' का अनुवाद 'वेनिस का व्यौपारी' के नाम से किया।

भारतेन्दु-युग के पूर्व के अनूदित नाटकों पर विचार करते हुए देखा गया है कि उस युग में पौराणिक नाटकों के ही अनुवाद प्रधान रूप से हुए। भारतेन्दु-युग में पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक भी अनूदित हुए। पहले के नाटकों के अनुवाद में पद्य का उपयोग अत्यधिक किया जाता था, भारतेन्दु-युग के नाटकों का अनुवाद करते समय मूल रचना की भाँति पद्य के साथ ही गद्य का अनुवाद भी किया गया। अभिप्राय यह कि भारतेन्दु-युग में स्वाभाविकता पर लोगों की दृष्टि विशेष थी।

यदि रस की दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि इस युग में अनूदित रचनाओं में शृङ्गार और वीर का ही प्राधान्य है, जैसा कि इसके पूर्व के युग में था।

(शेष ३१ पृष्ठ पर)



रतनलाल बंसल

फ्रांस की सुरम्य सुन्दर भूमि को जर्मन टैंक कुचलते-रौंदते हुए आगे बढ़ रहे थे और उनकी अनुवर्तिनी होकर आगे बढ़ती जाती थी विजयी जर्मन सेना, जिसकी सफलता की कहानियों ने समस्त संसार को आश्चर्य के सागर में डाल रक्खा था। इस जर्मन सेना के पार्श्व-वर्ती भाग में डाक्टरों और नर्सों के खेमों के अतिरिक्त, एक और लम्बा चौड़ा खेमा रहता था, जिसकी रक्षा के लिए जर्मन अधिकारी सबसे अधिक सावधानो बरतते थे। युद्ध स्थल से उसे काफी दूर पर तो रक्खा ही जाता था, साथ ही सशस्त्र रक्षकों की एक टुकड़ी के अतिरिक्त दो वायुयान भी प्रत्येक समय उसके ऊपर मंडराया करते थे। उस विशाल खेमे में एक दुबला-पतला युवक रहा करता था, जिसके पतले-पतले ओंठ, सर पर मुलायम रेशमी बाल और सुकुमार छवि देखकर यह भ्रम होने लगता था कि जैसे कोई सुन्दर स्त्री पुरुषोचित परिधान में दिखाई दे रही हो। अधिकारियों द्वारा उसकी सुविधाओं का सबसे अधिक ध्यान रक्खा जाता था फिर भी किसी के भी मन में उसके प्रति ईर्ष्या के भाव नहीं थे। जर्मन सेना का एक-एक सिपाही उसे प्यार करता था। क्योंकि वह युवक वैज्ञानिक था और उसका कार्य था प्रतिरोधक उपाय निकाल कर जर्मन सेना की रक्षा करना।

कुछ ही मील दूर, युद्ध के मैदान में जब टैंक और तोपें गरजती होतीं, तब उन भयंकर गर्जनाओं से बहुत कुछ बेखबर सा वह युवक अपनी प्रयोगशाला में बैठा हुआ अनुसन्धान के कार्य में व्यस्त रहता। कभी-कभी पूरे चौबीस-चौबीस घंटे उसे अपनी मेज के सहारे ही बैठे-बैठे बिता देने पड़ते और उसका अर्दली यह देखकर चिन्तित हो उठता कि उसके मालिक ने पूरा दिन का दिन न केवल बिना भोजन के, बल्कि बिना चाय के भी बिता दिया है। युवक जब इन कार्यों से बहुत थक जाता था, तो वह अपना पियानों लेकर बैठ जाता और फिर शीघ्र ही कहीं दूर पर छूटते हुए बम के धड़ाकों के बीच, पियानो की स्वर लहरियों के साथ उसके मुख से निकले हुए गायन की सुमधुर पंक्तियाँ इस प्रकार फैलने लगती थीं, जैसे कि किसी श्मशान में कोई स्वर्ग की अप्सरा आकर गाने लगी हो।

सैनिक अधिकारी तो चाहते थे कि यह युवक गैसों के प्रतिरोधक उपायों के अतिरिक्त, स्वयं भी कुछ ऐसी विषैली गैसों का आविष्कार करे, जिनसे वे शत्रुओं को भली प्रकार मजा चखा सकें। वे वैज्ञानिक की प्रतिभा के कायल थे और उनका विश्वास था कि वह यदि इस ओर तनिक भी प्रयत्न करे तो उसे भारी सफलता मिल सकती है। इसके लिये उनकी ओर से वैज्ञानिक की बड़ी-बड़ी खुशामदें की गई थीं, लालच दिये गये थे, मातृभूमि के गौरव और देशभक्ति की दुहाइयाँ भी दी गई थीं और अन्त में उसे भारी भय भी दिखाया गया था, किन्तु वैज्ञानिक का हृदय किसी प्रकार भी इसके लिये तय्यार न हो,

सका कि वह विनाश और संहार के लिये अपनी प्रतिभा का उपयोग करे। वह धन या सम्मान के लिये यह कार्य नहीं करता था और न उसके विशाल दृष्टिकोण से मानव-मानव के बीच भी केवल इसलिये कोई भेद हो जाता था कि उसने इस या उस देश में जन्म लिया है। वह तो विश्व-मैत्री का समर्थक था और इस समय युद्ध के बीच उसने इस सेवा को केवल इसलिये स्वीकार कर लिया था, क्योंकि उसने समझा था कि इस प्रकार वह मानव जाति के एक भाग की महत्वपूर्ण सेवा कर सकेगा।

युद्ध स्थल में किसी नई गैस का प्रयोग होते ही वह उससे पीड़ित सैनिकों को देखने के लिये दौड़ पड़ता था और जब वह देखता कि उनकी इस भयंकर यातना का कारण विज्ञान ही है तो उसका हृदय विज्ञान के इस अपमान पर क्षोभ और ग्लानि से जलने लगता था। वह तुरन्त उसका उपचार खोजने में लग जाता और जब वह अपने कार्य में सफल हो जाता, तो अपने आविष्कार से इतने व्यक्तियों की यातना को दूर होते देख उसका मन सन्तोष और आनन्द से भर जाता था। इसी लिये पुष्प के समान कोमल दीख पड़ने वाला वह युवक सैनिक अधिकारियों द्वारा दिखाये गये भय और लालचों के सम्मुख वज्र जैसी कठोरता के साथ दृढ़ रहा और उसने स्पष्ट कह दिया कि ऐसा करने की अपेक्षा तो मैं अपने शरीर का गोलियों से छलनी बन जाना अधिक पसन्द करूँगा। वैज्ञानिक की जीत हुई। अधिकारी समझ गये कि अनुशासन के नाम पर इसे जेल में डाल कर हम केवल इसकी उपयोगिता से ही वंचित रहेंगे, जो कि हमारे लिये महान् हानिकारक होगी। इस प्रकार एक दुबले-पतले से निःशस्त्र युवक के सम्मुख उस महान् शक्ति के प्रतिनिधियों को झुकना ही पड़ा, जिनके नेत्रों में संसार-विजय के स्वप्न भरे हुए थे।

(२)

वैज्ञानिक की मेज के नीचे लगी हुई घंटी बजी, तो उसका हृदय किसी भावी आपत्ति की आशंका से भर उठा। यह इस बात का संकेत था कि बाहर कोई सैनिक अधिकारी अभी-अभी वैज्ञानिक से मिलना चाहता है, जिसके पास अवश्य ही किसी भयंकर गैस के व्यवहार की सूचना होगी। कई दिन के घोर परिश्रम के पश्चात् वैज्ञानिक को आज ही जरा विश्राम का अवसर मिला था। वह इस समय एक आराम कुर्सी पर लेटा हुआ अपनी प्रियतमा और भावी पत्नी सुन्दरी जेनी के चित्रों का अलबम देख रहा था, जिसमें उसके अनेक सुखद संस्मरणों का अंकन था। "यदि युद्ध न छिड़ गया होता तो अब तक हम दोनों परस्पर दाम्पत्य के मधुर बन्धन में बंध भी गये होते और इस समय युद्ध क्षेत्र में न होकर किसी सुन्दर उद्यान से घिरे हुए बंगले में हम दोनों ही अपनी प्रेम कथा के इन सचित्र पृष्ठों को उलटते होते, यह सोचते-सोचते वैज्ञानिक के नेत्रों में सुदूर जर्मनी में बैठी हुई अपनी प्रियतमा की छवि साकार हो उठी थी, किन्तु तभी घंटी बजी और उसकी आवाज़ ने उसके मधुर स्वप्नों पर विषाद की काली चादर फैला दी। "क्यों न इसे सुबह आने के लिए कह दूँ" वैज्ञानिक ने एक बार सोचा, लेकिन तभी गैस पीड़ित सैनिकों के कष्ट की कल्पना ने उसके मन को आच्छादित कर लिया। जेनी के चित्रों का अलबम अपने आप ही पास रक्खी छोटी सी तिपाई पर पहुँच गया और दूसरे ही क्षण एक भारी लम्बे कोट को बदन पर डाले वैज्ञानिक उस फौजी अधिकारी के सम्मुख खड़ा हुआ था जो उसकी प्रतीक्षा में करीब-करीब ऊब चुका था। "क्षमा कीजिये इतनी रात्रि को यह कष्ट देने के लिये," अफसर ने अभिवादन करने के साथ ही क्षमा याचना के विनीत स्वर में कहा, "मैं स्वयं जानता था कि इस समय आपके विश्राम में बाधा देना आप पर अन्याय करना है, लेकिन आप तो जानते ही हैं कि हमारा फौजी जीवन ....।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं" अफसर की लम्बी भूमिका से घबरा कर वैज्ञानिक ने आतुरता के साथ बीच ही में बोलते हुये कहा और फिर भय से पीले पड़े हुए उसके चेहरे को निर्निमेष दृष्टि से ताकता हुआ चिन्तायुक्त स्वर में बोला, "आज कोई नये समाचार हैं क्या?"

"न केवल नये बल्कि दुखद और भयानक भी," उत्तेजना के कारण अफसर का स्वर इतना अस्वाभाविक हो गया कि उसने स्वयं इसे अनुभव किया और एक क्षण के लिये चुप होकर फिर संयत स्वर में बोला, "आज जो हमारे आहत आये हैं उनमें कुछ सैनिक ऐसे हैं, जिनके शरीर पर ऊपर से तो एक खरोंच भी दिखाई नहीं देती किन्तु फिर भी उन्हें ऐसा अनुभव होता है, जैसे कि अन्दर ही अन्दर उनकी एक-एक नस फुकी जा रही हो। इससे उन्हें ऐसा भयानक कष्ट हो रहा है कि उनमें से अनेक ने आत्म-हत्या कर ली, कुछ वैसे ही चीख़ कर मर गये, और कुछ को डाक्टरों ने जब नींद आने की सुइयाँ लगायीं, तो उस औषधि की प्रतिक्रिया से ही वे चल बसे। अब जो शेष हैं उन्हें चारपाइयों से बँधवा दिया गया है, और वे इतने भयानक रूप से चीख रहे हैं कि उसे सुनना मनुष्य के वश की बात नहीं है।" वैज्ञानिक ने देखा कि यह कहते-कहते मनुष्यों की लाशों को कुचलते हुए आगे बढ़ने में अभ्यस्त उस अफसर की आँखें भी छला-छला आई हैं।

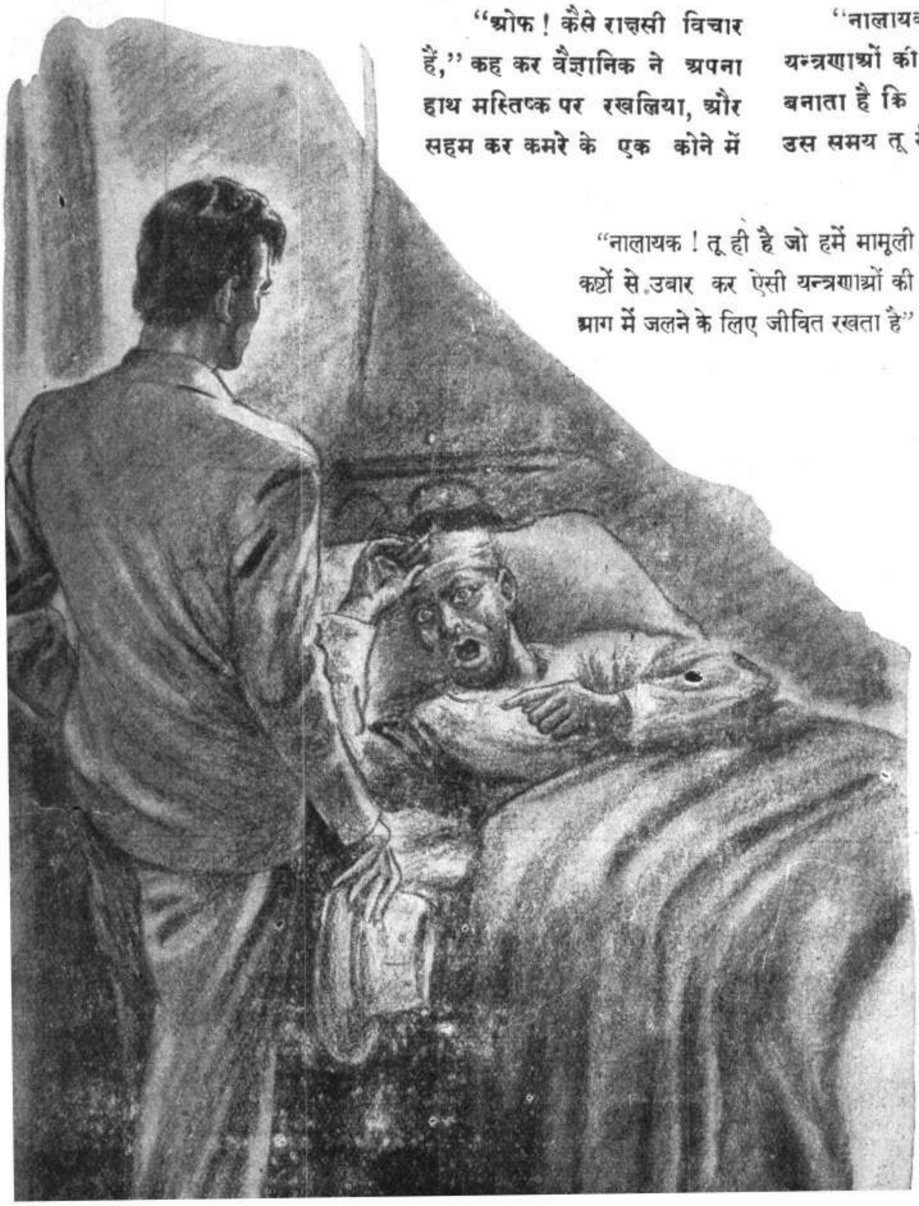
कुछ देर उस स्थान पर ऐसी घोर-निस्तब्धता छाई रही कि दोनों ज़रा ध्यान देते तो एक दूसरे के हृदय की धड़कन को भी सुन सकते थे। उन अभागे सैनिकों की यंत्रणा से वैज्ञानिक का हृदय इतना सिहर उठा था कि उसे सम्हलते कुछ देर लगी। तत्पश्चात् उसने काँपते से स्वर में कहा, "क्या इसी समय मुझे आप उन आहतों को दिखा सकेंगे?"

"अवश्य, अवश्य, चलिये न! मुझे विश्वास है कि जितना शीघ्र उन्हें आप देख लेंगे, उतना ही हमारा लाभ है," कहकर अफसर ने फुर्ती से अपनी मोटर का दरवाज़ा खोला और वैज्ञानिक के बैठते ही उसे अस्पताल की ओर ले चला। कुछ मील चलने के पश्चात् अस्पताल के द्वार पर मोटर रुकी तो भीतर से आते हुए भयंकर चीत्कारों को सुनकर वैज्ञानिक के पैर काँप उठे, फिर भी अफसर का अनुसरण करता हुआ वह भीतर की ओर चला। रास्ते के बरामदे में उसे कुछ डाक्टर और नर्सें मिलीं, जिनके नेत्रों से घबराहट और भय टपक रहा था। उन सब के चेहरे ऐसे निर्जीव हो रहे थे, जैसे उनमें रक्त की एक

बूँद भी शेष न रही हो। ये दोनों जब उनके पास से निकले, तो वे शून्य दृष्टि से इनकी ओर देखते रहे और उनमें से एक को भी इन्हें अभिवादन करने तक का उत्साह न हुआ।

कमरे के भीतर पहुँचते हो वैज्ञानिक ने देखा कि इतना घोर कष्ट होते हुए भी इन सैनिकों की मानसिक चेतना ज्यों की त्यों है, क्योंकि उनमें से लगभग सभी ने इनको देखते ही पहिचान लिया, और उनमें से कुछ गन्दी गालियाँ तथा अपमानजनक शब्दों के साथ और कुछ प्रार्थना के रिरियाये हुए स्वर में, बन्दूक की गोलियों के द्वारा इस भयानक यन्त्रणा से छुटकारा दिलाने का आग्रह करने लगे। अपने गम्भीर ज्ञान के कारण वैज्ञानिक को यह समझते देर न लगी कि जो भयंकर गैस इन पर प्रयोग की गई है, उनमें जान-बूझ कर ऐसे तत्व भी मिलाये गए हैं, जो मस्तिष्क के स्नायुओं तथा मनुष्य की अनुभव शक्ति को और भी प्रखर करदें। जिससे कि गैस से उत्पन्न हुए दाह को उससे प्रभावित व्यक्ति अन्त तक भली प्रकार अनुभव करते रहें, और कष्ट से उत्पन्न हो जाने वाला उन्माद उनको यन्त्रणा को कुछ कम न करदे।

"ओफ! कैसे राक्षसी विचार हैं," कह कर वैज्ञानिक ने अपना हाथ मस्तिष्क पर रखलिया, और सहम कर कमरे के एक कोने में जाकर खड़ा हो गया। उसे साहस नहीं हो रहा था कि वह किसी रोगी के पास जाकर उसकी परीक्षा करे। इतने ही में उसने देखा कि उनमें से एक रोगी उसे अपनी ओर आने का संकेत कर रहा है। इससे उसे पहले कुछ भय सा प्रतीत हुआ किन्तु तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि इस रोगी से तो वह परिचित है। अभी एक मास पूर्व यही व्यक्ति, जब एक दूसरी गैस से पीड़ित था, तो उसकी प्रयोगशाला में लगभग एक सप्ताह तक रहा था और तब वैज्ञानिक को अनुभव हुआ था कि सभी सैनिक निपट गँवार ही नहीं होते। यह सैनिक तो कवि भी था और जिस दिन पूर्णतः स्वस्थ होकर वह वैज्ञानिक की प्रयोगशाला से चला था, तो उसने कृतज्ञतास्वरूप अपनी कुछ कविताएँ भी अत्यन्त ही मधुर स्वर में वैज्ञानिक को सुनाई थीं। इस समय उसकी भी यह स्थिति देखकर वैज्ञानिक का दुख द्विगुणित हो गया। वह शीघ्रता से उसकी चारपाई के पास पहुँचा और उसके सर के बालों में प्यार के साथ अपना हाथ फेरने के लिए नीचे झुकाया ही था कि-उस रोगी ने वैज्ञानिक के मुँह पर इतने जोर से थूक दिया, जिससे उसका तमाम चेहरा ही थूक से सन गया।



"नालायक ! तू ही है जो हमें मामूली कष्टों से उबार कर ऐसी यन्त्रणाओं की आग में जलने के लिए जीवित रखता है"

"नालायक! तू ही है जो हमें मामूली कष्टों से उबार कर ऐसी यन्त्रणाओं की आग में जलने के लिए जीवित रखता है और ढोंग बनाता है कि मैं युद्ध में कुछ भी सहायता नहीं देता। आह! यदि उस समय तू मेरा उपचार न करता और मुझे उस समय मर जाने देता तो आज मुझे इस तरह क्यों जलना पड़ता। बेशरम कुत्ते!" उस रोगी ने थूकने के साथ ही क्रन्दन से भर्राई हुई आवाज़ में कहा, तो पल भर के लिए सदैव सम्मान और प्रशंसकों के मध्य ही रहने वाले वैज्ञानिक का हृदय क्रोध से जल उठा, किन्तु,दूसरे ही क्षण रोगी के शब्दों में निहित सत्यता उसके अन्तरतम में चुभ गई। वह उठा और बिना किसी के एक शब्द कहे, उस कमरे से निकल कर तीर की भाँति अपनी प्रयोगशाला की ओर पैदल ही चल दिया। उसके हृदय में दुख और ग्लानि की आँधियाँ उठ रही थीं और अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधे बड़ी अधीर गति से वह आगे बढ़ा जा रहा था।

अपने खेमे में पहुँचते ही उसने मेज पर पड़ी हुई रूल उठाई और उसके प्रहार से अपने यन्त्रों को चकनाचूर करना प्रारम्भ कर दिया। छोटी-छोटी मूल्यवान मशीनों को उसने पृथ्वी पर पटक कर तोड़ डाला और बोतलों में भरे हुए तरल पदार्थ जमीन पर फैला दिए। पहरे के सन्तरी ने अन्दर से तोड़-फोड़ की आवाज़ सुन कर जब भीतर झाँका, तो यह हाल देख कर उसने सदर दफ्तर को फोन कर दिया। तुरन्त ही सशस्त्र सैनिकों की एक टुकड़ी आई और वैज्ञानिक को गिरफ्तार करके ले गयी।

हथकड़ियों से कसा हुआ वैज्ञानिक प्रसन्नता से झूलता हुआ चला जा रहा था, और उसको गिरफ्तार करने वाले सैनिक, जो अभी तक उसे हृदय से प्यार करते थे, उसके इस उन्माद पर दुख तथा आश्चर्य प्रकट कर रहे थे।

(३)

"मैं नहीं चाहता कि आपका इतनी अल्प वय में ही ऐसा कारुणिक अन्त हो। आप में प्रतिभा है और आप हमारे राष्ट्र के लिए महान् लाभदायक भी सिद्ध हो सकते हैं। आप यदि मेरे कथनानुसार अपना बयान दे दें, तो मैं सिद्ध कर दूँगा कि गैस पीड़ितों की असहनीय यंत्रणा को देखने से आपके मस्तिष्क पर इतना घातक प्रभाव पड़ा कि आप लगभग पागल हो गये और आपने उसी अवस्था में अपनी प्रयोग-शाला को नष्ट कर डाला।" वैज्ञानिक की मानसिक स्थिति की जाँच करने के लिये नियुक्त फौजी डाक्टर ने जब यह वैज्ञानिक से कहा, तो वैज्ञानिक मुस्करा कर बोला :

"धन्यवाद डाक्टर ! इस कृपा और अनुग्रह के लिए कोटि-कोटि धन्यवाद। किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं है कि मैं पुनः उसी कार्य में लग जाऊँ, जिसकी कल्पना मात्र से मेरा एक-एक रोम सिहर उठता है।"

"हाँ यह तो ठीक है," डाक्टर ने अपने माथे पर बल डालते हुए कहा, "लेकिन इससे घृणा करके आप युद्ध को मिटा तो नहीं सकते। युद्ध तो होगा ही, और उसमें यह सब भयानक बातें भी होंगी। अन्तर केवल यह होगा कि इस समय आपसे जो लाभ आहतों और पीड़ितों को पहुँच सकता है; वह नहीं पहुँचेगा।"

"लाभ !" वैज्ञानिक ने खीज भरी हँसी हँसते हुए कहा, "इसी "लाभ" की छलना ने तो युद्धमात्र से घृणा करते हुए भी आज तक मुझे इस कार्य में लगा रखा था, पर उस दिन एक सैनिक ने मेरी आँखें खोल दीं, मुझे उस दिन मालूम हुआ कि युद्धरत सैनिकों की चिकित्सा करना भी उन्हें उससे भी अधिक कष्टों की ओर ढकेलना है। नहीं डाक्टर ! अब मैं किसी प्रकार भी युद्ध के लिए कोई कार्य करने को तैयार नहीं हूँ," वैज्ञानिक ने दुखित स्वर में कहा।

"परिणाम ! हाँ, उससे भी बेखबर नहीं हूँ। जानता हूँ कि आपका निर्णय पहुँचते ही एक दिन मेरे मुकदमे का स्वाँग किया जायगा और फिर न्याय के नाम पर मुझे गोली से उड़ा दिया जायगा।" अन्तिम पंक्ति कहते-कहते वैज्ञानिक का गला थोड़ा काँप गया और उसके नेत्रों के सम्मुख एक लड़की की तस्वीर घूम गई, जिसे वह जेनी के नाम से पहिचानता था। उसे अपने हृदय के किसी भाग में कुछ दुर्बलता सी अनुभव हुई, लेकिन तभी उन सैनिकों की चीत्कारें उसके कानों में गूँज उठीं और फिर उत्तेजना से सूख गये ओठों को जीभ से तर करते हुए उसने कहा, "डाक्टर ! आप कहते हैं कि इससे लाभ क्या होगा ? मैं कहता हूँ कि इससे एक बड़ा लाभ तो यह होगा कि मेरी आत्मा को सन्तोष हो जायगा। कम से कम मुझे यह पश्चाताप तो नहीं करना पड़ेगा कि मैंने विज्ञान को, जिसे मैं मानव मस्तिष्क की सब से बड़ी विशेषता और प्रकृति की सब से बड़ी देन मानता हूँ, इस युद्ध में विनाश और संहार का कारण बनते देखकर भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं किया। साथ ही मेरे विश्वास है कि मेरा बलिदान उन सहस्रों व्यक्तियों की भावनाओं को जाग्रत कर देगा, जिन्हें आज मिथ्या देशभक्ति और राष्ट्रगौरव की मदिरा पिला कर ऐसा विवेकहीन कर दिया गया है कि वह बेचारे इस दृष्टिकोण से विचार ही नहीं कर पाते। अब सच कहना डाक्टर ! आजकल हम लोग जो काम एक दूसरे के साथ कर रहे हैं, क्या सचमुच ही वह गर्व करने योग्य है ?"

वैज्ञानिक का प्रश्न सुन कर डाक्टर के मन में हलचल सी मच गई। वह देर से यह अनुभव कर रहा था कि वैज्ञानिक के शब्दों की सत्यता और विचारों की दृढ़ता उस पर एक मोहक प्रभाव उत्पन्न कर रही है। यह उसके लिए एक भयप्रद स्थिति थी, अतः उसने जान बूझ कर कड़े बनाये हुए स्वर में कहा, "बहस नहीं महाशय ! मैं आपसे बहस करने नहीं आया। अब यदि आपको अपने कार्य पर पश्चाताप तक नहीं है तो फिर मैं विवश हूँ। सन्तरी कैदी को ले जाओ।"

आज्ञा मिलते ही सन्तरी ने वैज्ञानिक को पुनः उसकी कोठरी में पहुँचा दिया।

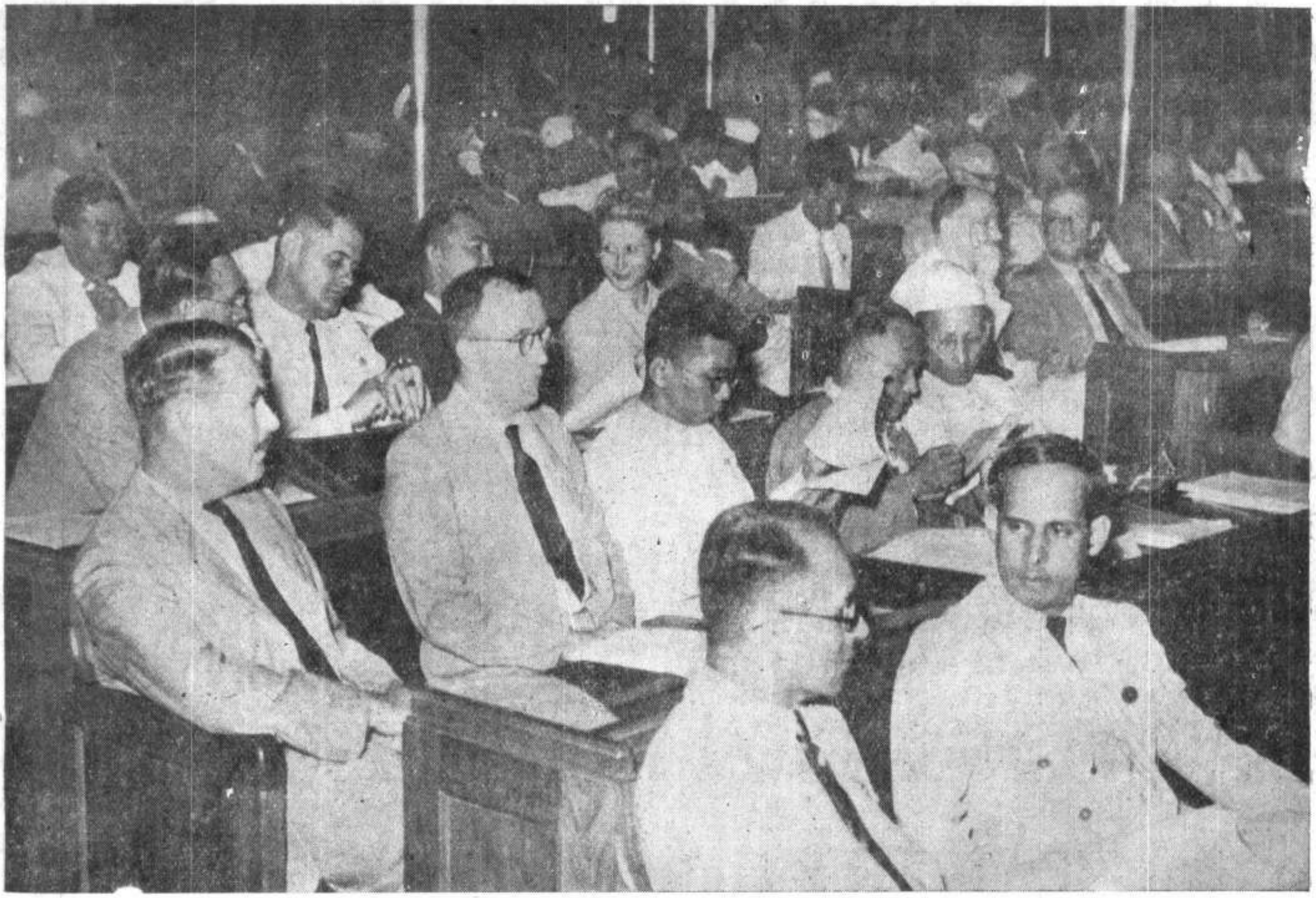
दूसरे ही दिन वैज्ञानिक को फौजी अदालत के सम्मुख उपस्थित किया गया। वहाँ पर जब वैज्ञानिक ने स्पष्टता से अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और आगे भी युद्ध में किसी प्रकार की सहायता न देने के विचार प्रकट किये, तो निर्णायकों को अपना निर्णय सुनाने में अधिक देर न लगी। इस अपराध का एक ही दण्ड था, प्राणदण्ड, और वही उसे सुना दिया गया।

दूसरे दिन वैज्ञानिक को जब दण्ड देने के स्थान पर लाया गया तो गोली मारने से पूर्व प्रार्थना करने के लिये उसे पांच मिनट दिये गये। उपस्थित व्यक्तियों ने आश्चर्य के साथ देखा कि वह प्रार्थना करने के बजाय ज़मीन में पड़े हुए रेत में अपनी उँगली से कुछ लिख रहा है। समय पूरा होते ही वह अपने आप खड़ा हो गया। एक बार ज़ोर से "जेनी ! मैं जा रहा हूँ" कहकर चिल्लाया और फिर बन्दूक की गोलियों से छलनी होकर गिर पड़ा।

डाक्टर जब उसके शव की परीक्षा के लिये वहाँ पहुँचा तो सब से पहले उसकी दृष्टि रेत में अंकित उन अक्षरों पर पड़ी, जो प्रार्थना के लिये मिले हुए समय में वैज्ञानिक ने अपनी उँगली से लिखे थे। उसने लिखा था।

"मानव जीवन की सुविधायें और समृद्धि ही विज्ञान का एक मात्र लक्ष्य, और वैज्ञानिक की साध है। आज की सामाजिक विषमता इसमें बाधक है, मैंने उसके प्रतिकूल कार्य करके विज्ञान पर बलात्कार करने की अपेक्षा स्वयं बलिदान हो जाना अधिक उचित समझा। मेरा विश्वास है कि मेरा बलिदान मानव समाज के कल्याण में कुछ न कुछ सहायक अवश्य सिद्ध होगा।"

कुछ ही देर में हवा का एक झोंका आया। उसने रेत पर लिखे अक्षरों को सर्वथा नष्ट कर दिया, लेकिन उस डाक्टर के हृदय की धड़कन में कभी-कभी ये शब्द बोलने लगते हैं। × ×



अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन का एक दृश्य—प्रथम पंक्ति में संयुक्तराष्ट्र के प्रेक्षक बैठे हैं और दूसरी पंक्ति में बर्मा के प्रतिनिधि।

एशियाई प्रादेशिक श्रम सम्मेलन

जगदीश प्रसाद

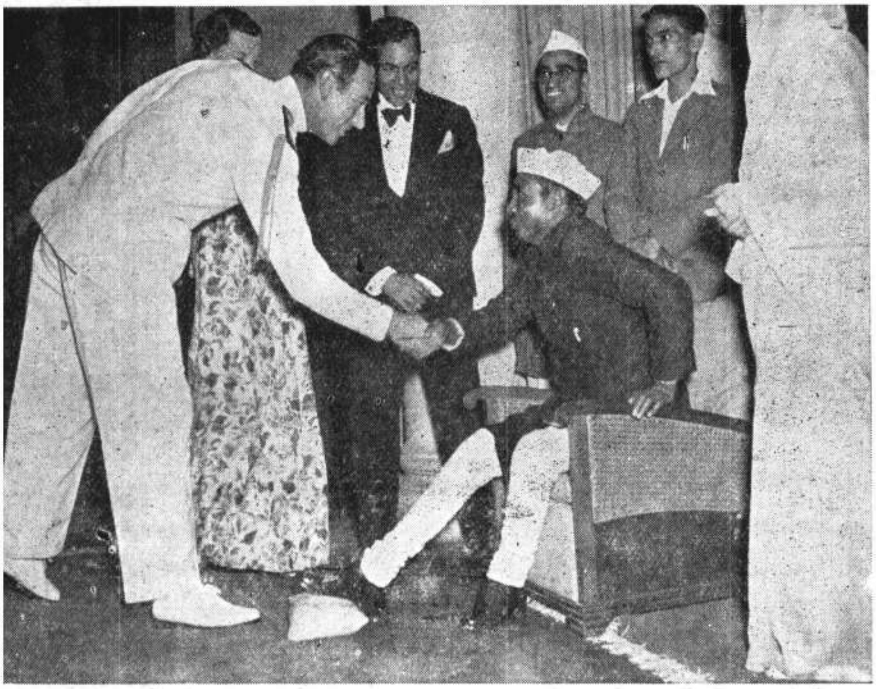
अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंगठन की स्थापना आज से २८ वर्ष पूर्व राष्ट्र संघ (लीग आफ़ नेशन्स) के एक आवश्यक अंग के रूप में हुई थी। ५२ राष्ट्र इसके सदस्य हैं तथा इसकी नीति की घोषणा १९४४ के प्रसिद्ध फ़िलाडेलफ़िया अधिकार-पत्र में इस प्रकार की गई थी : श्रमिक कोई निर्जीव वस्तु नहीं है, उसके लिए संगठन और विचार स्वातंत्र्य एक आवश्यकता है, किसी भी जगह की गरीबी हर जगह की समृद्धि के लिए ख़तरा है, एवं प्रत्येक राष्ट्र में अभावों का अन्त करने के लिए विकट संघर्ष होना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का स्वरूप अधिकाँशतः यूरोपियन रहा है। इसके निर्णयों और सिफ़ारिशों का सम्बन्ध एशियाई देशों से नहीं के बराबर ही था क्योंकि इसकी प्रवृत्ति पश्चिमी श्रम की समस्याओं पर केन्द्रित होने की अधिक रही है जब कि एशियायी देशों के लाखों करोड़ों श्रमिकों और कृषिकारों की बिल्कुल उपेक्षा की गई। इसके ५२ सदस्यों में केवल ६ देश एशियाई हैं और इसके स्थायी कार्यालय में भी एशियाई लोगों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। जितने भी साधारण अथवा प्रादेशिक सम्मेलन हुए हैं वे पश्चिमी गोलार्द्ध में या जेनेवा में हुए हैं या मोन्ट्रीअल में। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की ओर से एशियाई समस्याओं के प्रति प्रायः पूर्ण उपेक्षा रही है।

अतः प्रारम्भिक एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन अपने प्रकार का प्रथम सम्मेलन था जो एशिया की भूमि पर हुआ और यह इस बात की महत्त्वपूर्ण साक्षी थी कि दूसरे महायुद्ध के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का केन्द्र यूरोप से हटकर एशिया हो रहा है। इस बात का यह प्रत्यक्ष प्रमाण था कि एशिया की समस्याएं अब अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं हो गई हैं जिनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय विचार-विनिमय आवश्यक हो गया है। यह इस बात का प्रतीक भी था कि औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था का अन्त हुआ और अब नयी स्वशासित इकाइयों का उदय हुआ है। भारत के सद्यःप्राप्त स्वातन्त्र्य पद ने और महायुद्ध के फलस्वरूप हुई उथल-पुथल ने उसको एक निश्चित वास्तविकता



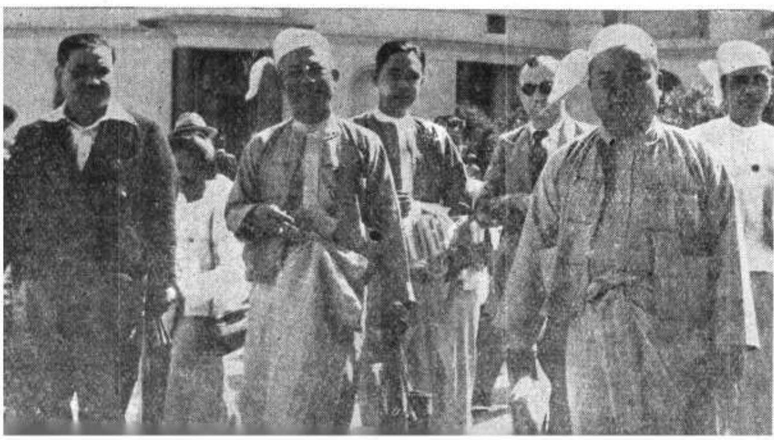
↗ ऊपर के चित्र में पंडित नेहरू स्वागत भाषण दे रहे हैं। चित्र में बाईं ओर से दाईं ओर श्री० एफ० इलानेस रामोस (अ० श्र० सं० की संचालक समिति के मालिक-दल में मेक्सिकन प्रतिनिधि) श्री० टी० एरुलकर, (अ० श्र० सं० की संचालक समित्ति में भारतीय मालिकों के प्रतिनिधि माननीय श्री जगजीवन राम (भारत की केन्द्रीय सरकार के श्रम मंत्री) तथा सर गिल्डायूम मिरिडिन इवानस, (अ० श्र० सं० की संचालक समिति के अध्यक्ष) तथा ब्रिटिश-प्रतिनिधि मंडल के नेता बैठे हैं।



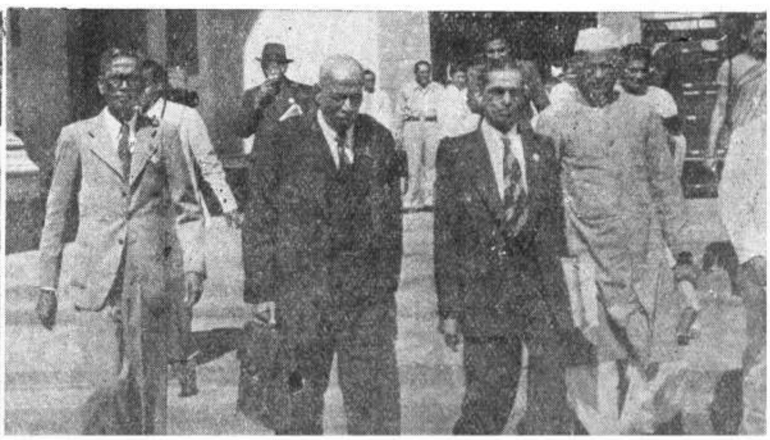
*

सम्मेलन के प्रतिनिधियों के सम्मान में दिये गये भोज के अवसर पर श्री जगजीवन राम लार्ड माउन्टबैटन का स्वागत कर रहे हैं। कुछ दिन पहले वायुयान दुर्घटना में माननीय श्रम-मंत्री को चोट आ गई थी। लेडी माउन्टबैटन पीछे खड़ी हैं और श्रम सेक्रेटरी श्री लाल तथा निजी सेक्रेटरी श्री सिनहा प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं। ←

बर्मी प्रतिनिधि सम्मेलन में जा रहे हैं।



श्री मिराजकर, श्री एन० एम० जोशी और श्री फड़के सम्मेलन भवन के बाहर।



सम्मलन का कुछ झाँकियाँ

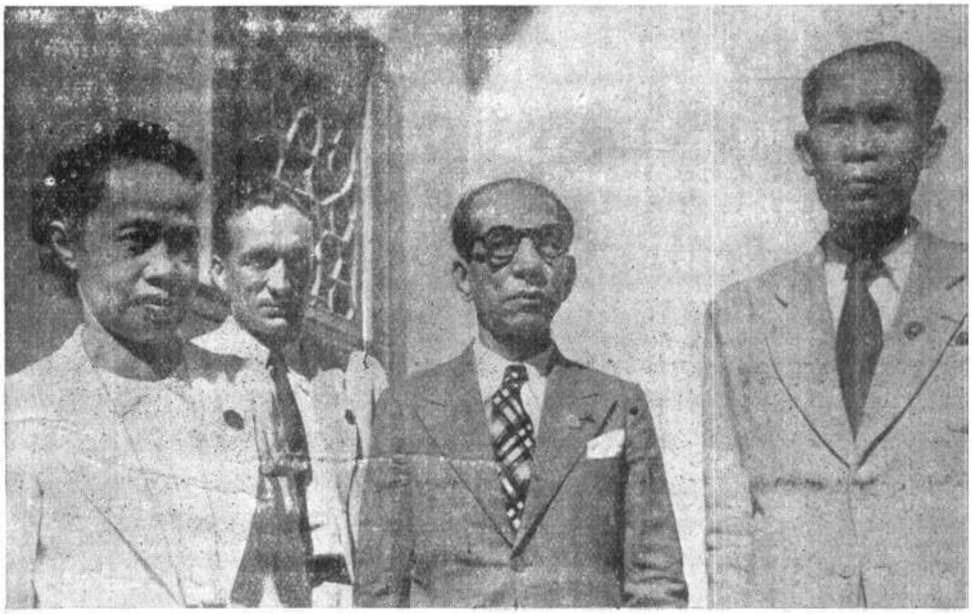


मलय श्रमिकों के प्रतिनिधि श्री बुरहानुद्दीन लार्ड और लेडी माउन्टबैटन के साथ।



चीनी प्रतिनिधि श्री पाओ हुआ कुओ भाषण दे रहे हैं।

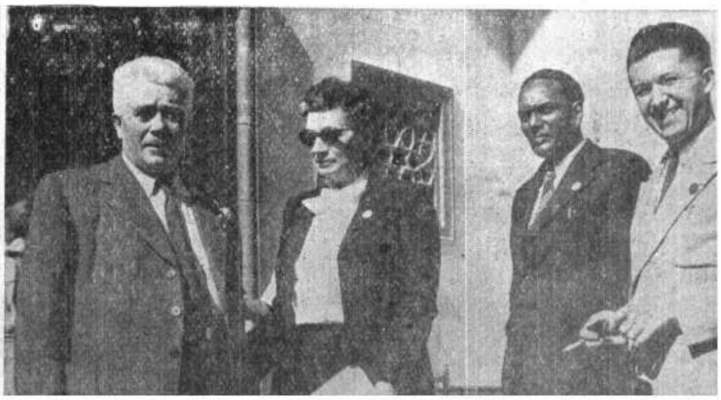
*



कम्बोडिया के प्रतिनिधि राजकुमारी चुकोंथों, एम० तयबभाई हिपतुला मछवा और श्री पेन नौथ ·



चाय पीते हुए श्री जे. रेम्स, चीनी प्रतिनिधि श्री पाओ और एन. एम. जोशी



सम्मेलन में भाग लेने वाले फ्रांस के प्रतिनिधि

दे दी जो कि पहले सम्भव नहीं थी। इन बातों ने एशिया महाद्वीप के मान को ऊँचा कर दिया और यह दुनिया के दो-तिहाई श्रमिकों की निवास भूमि का उचित मान था जो कि बहुत पहले हो जाना चाहिए था।

दिल्ली सम्मेलन वास्तव में १६४६ में होने वाले शंघाई सम्मेलन की भूमिका है। यह प्रारम्भिक सम्मेलन दो सप्ताह बाद ही होने वाले इस्तम्बूल सम्मेलन की भी भूमिका है। दिल्ली सम्मेलन में हिन्द महासागर के छोर पर बसने वाले तथा इसके समीपवर्ती समुद्रों पर स्थित न्यूज़ीलैण्ड से लेकर अफ़ग़ानिस्तान तक के देशों की समस्याओं पर विचार हुआ।

सम्मेलन २७ अक्टूबर १६४६ को ११ बजे नयी दिल्ली में विधानपरिषद् भवन में प्रारम्भ हुआ और ८ नवम्बर तक रहा। इसमें २२ एशियाई देशों के १०० प्रतिनिधियों और प्रेक्षकों ने भाग लिया। इनके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय की प्रबन्ध समिति का एक प्रतिनिधिमण्डल भी सम्मिलित हुआ। एशियाई देशों में अफ़ग़ानिस्तान आस्ट्रेलिया, बर्मा, कम्बोडिया, लंका, चीन, कोचीन-चीन, भारत के फ्रांसीसी उपनिवेश, न्यू केलेडोनिया, भारत, लाओस, मलयसंघ, नेपाल, नीदरलैण्ड्स संघ, न्यूज़ीलैण्ड, पाकिस्तान, फ़िलिपाईन्स, स्याम, सिंगापुर और वीटनाम थे। इससे पहले कभी भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के किसी भी प्रादेशिक सम्मेलन में इतने प्रतिनिधि एकत्र नहीं हुए थे।

अपने स्वागत भाषण में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एशिया में जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के महत्त्व पर ज़ोर देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की फिलाडेलफिया वाली प्रसिद्ध घोषणा का उल्लेख किया कि धरती के किसी भी देश की निर्धनता समस्त देशों की समृद्धि के लिए एक खतरा है। विश्वशान्ति का मौलिक आधार तो संसार के समस्त भागों में सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक न्याय होना चाहिये। उन्होंने इस बात की आशा प्रकट की कि वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब कि एशिया से औपनिवेशिक तंत्र के प्रत्येक स्वरूप का अन्त हो जायगा। हमें आशा करनी चाहिए कि यह सम्मेलन श्रमिकों, उद्योग धन्धों में काम करने वाले लोगों तथा किसानों की भलाई के लिये ऐसी व्यवस्था बना देगा जिससे औद्योगिक शान्ति का जन्म हो सकेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष सर जी० एम० इवान्स ने कहा कि इस सम्मेलन की सफलता पर ही भारत की जनता का सामाजिक न्याय एवं आनन्द निर्भर करता है। हमारा परम लक्ष्य समस्त संसार में जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा पिछड़े देशों को उन्नत देशों के समकक्ष खड़ा करना है। उनके विश्वास में संसार को एशिया की संस्कृति, ज्ञान तथा अनुभव की जितनी आज आवश्यकता है, उतनी पहले कभी न थी। इस कार्य के लिये, पूर्व और पश्चिम को मिलाने के लिये, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन समस्त अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक उपयोगी संस्था सिद्ध हो सकता है।

सम्मेलन के सभापति श्री जगजीवनराम ने कहा कि एशियाई देशों की मुक्ति को विरल घटनाएँ नहीं समझ लेना चाहिये परन्तु इन्हें नये और शक्तिशाली सम्बन्धों का जन्म मानना होगा, इनसे शान्ति और न्याय की भावना को बल मिलेगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क को बढ़ाने से ही शान्ति और समृद्धि के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है।

अब सम्मेलन की रूपरेखा पर भी विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। यद्यपि इस सम्मेलन का प्रमुख लक्ष्य एशियाई समस्याओं पर विचार करना ही था तथापि अपने मान में यह सम्मेलन महाद्वीपीय न हो कर सुदूर पूर्व का प्रादेशिक सम्मेलन था। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सुदूर पूर्व के सभी सदस्य देश तथा उनके उपांग सम्मिलित हुये। एक ओर तो बर्मा, लंका, मलयसंघ, और सिंगापुर के पृथक प्रतिनिधित्व की संयोजना की गयी थी तथा दूसरी ओर कम्बोडिया, कोचीन चीन, भारत में फ्रांसीसी उपनिवेश, न्यू केलेडोनिया, लाओस और वीटनाम को निमन्त्रित किया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का यह एक पहला महत्त्वपूर्ण सम्मेलन था जिसमें इन प्रदेशों के अपने-अपने प्रतिनिधि सम्मिलित हुए।

सम्मेलन के कार्यक्रम में निम्नलिखित चार बातों पर विचार करना था (१) सामाजिक सुरक्षा की समस्याएँ (२) सामान्य रूप से श्रम-समस्याएँ जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा स्वीकृत श्रम उपायों को कार्यान्वित करने का काम भी शामिल है (३) श्रम-मानों को कार्यान्वित करने के लिये कार्यक्रम बनाना और (४) उद्योगीकरण की समस्याओं सहित सामाजिक नीति की आर्थिक पृष्ठभूमि।

इनके अतिरिक्त सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के डायरेक्टर जनरल की रिपोर्ट पर भी विचार-विनिमय हुआ। इस रिपोर्ट में श्रम-संगठन द्वारा एशियाई देशों में अतीत में किये गये कार्यों का विवरण तथा भविष्य में कार्य के अनुमानित प्रसार का संकेत दिया था। सम्मेलन ने विभिन्न विषयों पर २० प्रस्ताव पास किए। सबसे महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव एशियाई प्रादेशिक त्रिदल समिति एवं प्रादेशिक कार्यालय बनाने का था। एशियाई देशों को अपना उत्पादन बढ़ाने तथा मज़दूरों की दशा सुधारने में जिस आवश्यक सामग्री, आर्थिक तथा टेकनिकल सहायता, खाद्य और अन्य वस्तुओं की आवश्यकता हो, उनको सुलभ करने में सहायता देना इस समिति का उद्देश्य होगा और इसके साथ ही यह समिति उन्नत औद्योगिक देशों में पर्याप्त कारीगरों के लिए विभिन्न उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था भी करेगी ताकि एशियाई देशों के औद्योगिक विकास में सहायता मिल सके। मज़दूरों की विभिन्न श्रेणियों—आदिम कबीलों, अछूतों, स्त्रियों, बच्चों तथा कम अवस्था वालों, देहात के मज़दूरों, फार्मों के श्रमिकों तथा एशिया के नाविकों की दशा सुधारने के सम्बन्ध में भी सुझाव पास किए गए। बेगार, मज़दूरों के लिए अच्छे गृहों की व्यवस्था, नौकरी, व्यावसायिक तथा टेकनिकल शिक्षा, जिन व्यवसायों में अभी कम मज़दूरी मिलती है उनमें वेतन-वृद्धि, भूमि-अधिकार आदि के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पास किए गए। छोटे-छोटे गृह-उद्योगों तथा व्यवसायों के विस्तार की संभावना तथा उचित ढंग पर उनके विकास की आवश्यकता पर भी एक प्रस्ताव पास किया गया। एशियाई देशों के लिए यह प्रस्ताव

बड़े महत्व का है। सम्मेलन ने आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया जिसमें उत्पादन तथा उत्पादन क्षमता के अत्यधिक विस्तार और मज़दूर तथा मालिकों के झगड़ों को शीघ्र और सुन्दर ढंग से निपटाने की व्यवस्था करने पर ज़ोर दिया गया था। सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के घोषणापत्रों में जिन समाजिक धरातलों की सिफ़ारिश की है उनको क्रियात्मक रूप देने के लिए एक कार्यक्रम भी बनाया है।

इन प्रस्तावों ने एशियाई देशों के सम्मुख एक विस्तृत योजना तथा ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत कर दिया है। कृषिकारों तथा मज़दूरों की दशा सुधारने के लिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करने की महत्ता को भली-भाँति समझा गया। एशियाई देशों में मजदूरों की स्थिति सुधारने में उससे बड़ी सहायता मिलेगी।

एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई और इससे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग का प्रादुर्भाव होता है। यह सम्मेलन विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण अवसर पर हुआ जब कि एशिया के लोगों ने अपनी इच्छानुसार अपना शासन चलाने के लिए सत्ता ग्रहण की। समस्त एशियाई देशों ने सर्वसम्मति से इस बात को स्वीकार किया है कि इस सत्ता का उपयोग जनता की दशा सुधारने के लिए किया जाना चाहिये। यदि प्रादेशिक श्रम सम्मेलन एशिया की गिरी हुई आर्थिक स्थिति को सुधारने में सफल हो जाता है जिससे कि उसके देहाती और नागरिक मज़दूर का जीवन धरातल उन्नत देशों के मज़दूरों के समान हो जाय और वे भी सामाजिक संकटों से दूर रह सकें और इसी उद्देश्य के लिये यदि सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बढ़ाने में भी सफल हो जाता है तो वह अपने संस्थापकों की आकांक्षाओं की पूर्ति करेगा जिन्होंने एशिया के नागरिक के उज्ज्वल भविष्य की नींव रखी है।

* * *

दिवाली

बाबूराम पालीवाल

आज दिवाली फिर आई है तुम हो कोसों दूर सयानी।

[१]

लोगों ने नव दीप जगाये मैंने तम में तुम्हें निहारा,
कोटि कोटि करुणा से दृग भर प्राणों का प्रिय अमृत वारा।
तुम हो दूर दृगों से पर हो अन्तर के नयनों के आगे,
अन्धकार के मेरे ये क्षण सहसा तव-प्रकाश में भागे।
तम-प्रकाश की आँख मिचौनी भावुक मन की है नादानी।
आज दिवाली फिर आई है तुम हो कोसों दूर सयानी।

[२]

नभ के वक्षस्थल पर हँसते हैं ज्यों चमचम करते तारे।
वसुधा के प्राङ्गण में भी तो हँसते हैं ये दीपक सारे।
आज अवनि से अम्बर तक जब हास भर रहा कण-कण में,
क्या जाने क्यों जग का सारा सदन बसा है मेरे मन में।
लाख रोकने पर भी मेरे भर आया नयनों में पानी।
आज दिवाली फिर आई है तुम हो कोसों दूर सयानी।

[३]

कम्पित करसे तुमने भी तो दीपक आज जगाया होगा,
चेतनता की एक किरन से तम को दूर भगाया होगा।
उस प्रकाश में तुमने उन्मन डाली होगी चितवन बाँकी,
मेरा भावुक कवि दृग मीचे तम में वही देखता झाँकी।
जिससे आज नवीन बन गई फिर से अपनी व्यथा पुरानी।
आज दिवाली फिर आई है तुम हो कोसों दूर सयानी।

[४]

जग की जगमग में भी तुमने एक शून्य पर दृष्टि लगाये,
अक्षत चन्दन धूप दीप सब चढ़ा दिये होंगे मन भाये।
लख कर सुमुखि समर्पण पल को टूटे होंगे बन्धन सारे,
तुम वरदान ले रहीं होगी मधुर मिलन का हाथ पसारे।
एक निमिष की यही कल्पना बनी युगों की मिलन कहानी।
आज दिवाली फिर आई है तुम हो कोसों दूर सयानी।

[५]

मेरी गहन अमा में भी तो लो तुमने भर दी उजियाली।
प्राण तुम्हारी मधु सुधि ही ने उर में शत-शत भरी दिवाली।
आत्मसमर्पण की बेला में मैं ही क्यों पीछे रह जाऊँ।
देवि, तुम्हारा पूजन करने मन-मन्दिर में तुम्हें सजाऊँ।
दूरी कहाँ जहाँ मैं तुम में औ तुम मुझ में हो कल्याणी।
आज दिवाली फिर आई है औ तुम मेरे निकट सयानी।

देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

वाल्मीकि चौधरी

साधारण वेश-भूषा, सरल स्वभाव और स्नेहपूर्ण व्यवहार न बड़प्पन का गर्व, न नेतृत्व का नशा। सादगी, सचाई साधुता का सजीव स्वरूप। यही है राजेन्द्र बाबू का शब्द चित्र। वस्तुतः राजेन्द्र बाबू भारतीय ग्रामीण जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। दरिद्रता और दासता देख कर किशोरावस्था में ही राजेन्द्र बाबू का दिल दुख से भर गया था और उसी समय से वे सोचने लगे थे कि देश का उद्धार और निस्तार कैसे हो सकेगा।

ठीक उसी समय राजेन्द्र बाबू को भविष्य-निर्माण का रास्ता भी चुनना था। उन्होंने सेवा का रास्ता अपनाया। वे अपनी माता जी से कहा करते थे, "मां, मुझसे यह आशा न रखना कि मैं पढ़ लिख कर धन कमाऊंगा। मेरा मार्ग तो कुछ और ही होगा।" देश सेवा के मार्ग के इस पथिक को गुलामी की बेड़ी को तोड़ने में महात्मा जी ने अपने साथ लिया। इन्होंने वकालत का चोगा उतार फेंका और लाखों रुपये सालाना की आमदनी को ठुकरा कर भावी भोग-विलास की कल्पना से आँख मूंद कर किसानों के बीच उन्हीं की तरह जीवन व्यतीत करने लगे। महात्माजी द्वारा स्थापित आश्रम में बैठ कर या गांव-गांव ऊबड़ खाबड़ राह से पैदल जाकर ये लोगों की दर्द भरी कहानी सुनते, उन्हें धीरज बँधाते तथा उनका हाथ बटाते।

देश के राजनीतिक जीवन में राजेन्द्र बाबू हृदय और मस्तिष्क का काम करते हैं। ये दो बार राष्ट्र के सफल राष्ट्रपति रह चुके हैं तथा फिर तीसरी बार इस पद के लिए देश ने इन्हीं को चुना है। इन्होंने कितनी ही नाजुक घड़ियों तथा विकट परिस्थितियों में राष्ट्र की पतवार संभाली है। यश अपयश की भावना से ऊपर उठ कर एक मात्र कर्तव्यपरायणता के विचार से अनुप्रेरित हो इन्होंने राष्ट्रीय आह्वान का कई अवसरों पर आदर किया है।

बिहार के प्रलयकारी भूकम्प में लाखों आदमी बेघरबार, तबाह और निर्धन हो चुके थे, कितनों की जानें गयी थीं। इधर तो दैवी प्रकोप और दूसरी ओर भारत के ब्रिटिश सत्ताधिकारियों ने सभी नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को जेल में बन्द कर रक्खा था। राजेन्द्र बाबू भी जेल के अस्पताल में बीमार थे। दमे के ये पुराने मरीज़ हैं। प्रायः जाड़े तथा बरसात में ही इनकी बीमारी इनको सताती है। पन्द्रह जनवरी सन् १९३४ की बात है। महीनों से बिस्तर से नहीं उठे थे। इसी बीमारी की अवस्था में ही १६ जनवरी को जेल के अस्पताल से रिहा किये गये थे। भूकम्प से पीड़ित लोगों का कराहना सुन कर राजेन्द्र बाबू का भोजन, शयन और विश्राम खत्म हो गया। अस्वस्थ और निर्बल होते हुए भी वे निकल पड़े रोमांचकारी विपत्ति में पड़े लोगों को उबारने तथा हर तरह से सहायता पहुंचाने के लिए दान देने वालों से भीख मांगने लगे। उनकी अपील पर तीस चालीस लाख रुपए आये लाखों रुपयों का सामान आया।

राजेन्द्र बाबू की सेवा पाकर जनता ने उन्हें एक स्वर से अपना राष्ट्रपति चुना। यह भी इनके लिए एक ज़बर्दस्त परीक्षा थी। ऐसे संकट काल में जब कि कांग्रेस का संगठन प्रायः खतम कर दिया गया था, इनको यह श्रेय मिला। बम्बई में इनका जो स्वागत हुआ वह अब तक किसी सम्राट को भी नसीब नहीं हुआ। इन्होंने जब राष्ट्रपति की हैसियत से सारे भारत का दौरा किया तो इनकी वाणी पर कांग्रेस संगठन को देश ने फिर से मज़बूत करने के लिए हर तरह से मदद की। अनेक बार जब देश संकट में पड़ा तब राजेन्द्र बाबू ने देश की बागडोर अपने हाथ में संभाली है। इन्होंने जब राष्ट्र की बागडोर पहलीबार संभाली तब देश एक आन्दोलन से गुजर कर ब्रिटिश नौकर शाही से कुचला जा चुका था। महात्मा जी कांग्रेस से अलग हो चुके थे। साम्प्रदायिक मतभेद ने मालवीय जी को भी अलग कर रक्खा था, ऐसी अवस्था में कांग्रेस संगठन को मज़बूत बना कर इन्होंने अपने नेतृत्व की योग्यता को सिद्ध कर दिया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की भी इन्होंने बड़ी सेवा की है। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति रह कर सारे भारत में इन्होंने हिन्दी की अलख जगाई है। कानून के तो आप विद्वान हैं ही। इसी पर तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने डाक्टर ऑफ ला की उपाधि से इन्हें विभूषित किया। आगरा विश्वविद्यालय ने इन्हें डाक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि प्रदान की है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें विद्यावाचस्पति की सर्वोच्च उपाधि दी है और इस बार पटना विश्वविद्यालय ने भी डाक्टर की उपाधि देकर अपने आपको धन्य कर लिया।

सन् १९३९ में ऐसे राष्ट्रपति की ज़रूरत थी जिस पर गलतफहमी और निन्दा का अवसर ही न हो। ऐसी परीक्षा की घड़ी में राजेन्द्र बाबू का नाम आया और देश ने देखा कि वे ही अकेले ऐसे हैं जिनकी सेवा और प्रेम की सफेद चादर पर कोई काला दाग लग ही नहीं सकता। और लगा भी नहीं।

पहली झांकी में ही उनके प्रति हर हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। उनका बाह्य रूप अन्तर की भांति इतना स्वच्छ है कि उस पर उनके हृदय के सारे भाव झलक पड़ते हैं। इनसे परिचय और वार्तालाप होने पर तो यह धारणा हो जाती है कि यह एक ऐसा महापुरुष है जो गरीबों का गर्व, दासता का दुश्मन, मज़दूरों का साथी, किसानों का कर्णधार और स्वतन्त्रता का संदेशवाहक है।

जब राष्ट्रीय-सरकार बनने की बात चली तो देश की खाद्य स्थिति बिगड़ी हुई थी। ऐसी भयंकर अवस्था में इनके ज़िम्मे खाद्य तथा कृषि विभाग दिया गया। इसी बीच विधान-परिषद् के अध्यक्ष का गुरुतर भार इन पर आया जिसके लिए एक महान् व्यक्तित्व की ज़रूरत थी। राजेन्द्र बाबू ने जिस सफलता से विधान परिषद् का संचालन किया है उससे देश का मस्तक ऊंचा ही हुआ है।

आज जब कि राष्ट्र के कर्णधार, कांग्रेस के महारथी लोग राष्ट्रीय सरकार के काम में लगे हैं तो कांग्रेस का भार उठाने के लिए राजेन्द्र बाबू को ही चुना गया है।

×

'ये पुराने लोग हैं'

मूल लेखक : मुकर्रम कामिल सू अनुवादक : आगा मोहम्मद याकूब दादाशी

दूसरा महायुद्ध अभी छिड़ा नहीं था। इस घर में वे चारों रहते थे और बड़ी निश्चिन्तता से प्रेम का जीवन बिता रहे थे। पिता एक साधारण सा मनुष्य था, माता बहुत समझदार स्त्री थी, बच्चे इस घर की शोभा थे और माता-पिता की आँखों के तारे थे। ये सब लोग अपने छोटे से संसार में मगन थे। इन्हें बाहर की हलचल का न कोई ज्ञान था और न उससे कोई सम्बन्ध।

प्रातःकाल ही माता रोटियाँ पकाती, चाय बनाती और सब बड़ी प्रसन्नता से कलेवा करते। इसके उपरान्त बच्चे पाठशाला चले जाते और पिता बाज़ार से सौदा लाकर दफ्तर चला जाता। माता घर का काम-काज स्वयं करती थी। सायंकाल पिता तथा बच्चे अपने-अपने समय पर घर लौटते और उनके दैनिक जीवन का यही कार्यक्रम था।

घर के फ़र्श, क़ालीन, परदों तथा अन्य सामान से यही प्रकट होता था कि यह एक पुराने ढंग का तुर्की घराना है। माँ-बेटी को भंडार घर का विशेष ध्यान रहता था। कभी-कभी इसके भीतर जातीं और संदूकों को खोलतीं तो इत्र तथा साबुन की सुगन्धियों से घर महक उठता था। एक-एक गठरी निकालतीं और वस्त्रों को बाहर लाकर हवा देतीं। इन गठरियों में क्या कुछ न था। बढ़िया कढ़ी हुई चादरों, दुशालों, कमीज़ों, आभूषणों और सजावट की सामग्री से लेकर नहाने के तहमदों तक सभी कुछ तो था। इन वस्तुओं को देखकर फ़खरिया की आँखें चौंधिया जाती थीं। वह सोचने लगती कि एक न एक दिन ये वस्तुएँ अवश्य ही मुझे दहेज़ में मिलेंगी और जब मेरा विवाह होगा तो मैं भी एक ऐसे ही घर की स्वामिनी बनूँगी। इस लड़की के निकट यह छोटा-सा घर भी एक बड़ी वस्तु था और इससे बढ़िया घर की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

युद्ध छिड़ा तो ये लोग भी परिवर्तित परिस्थितियों की कठिनाइयों का अनुभव करने लगे। दो-एक वर्ष तो गुज़ारा होता रहा परन्तु बाद में दैनिक वस्तुओं के अभाव और महँगाई से तंग आ गए। माता-पिता और बच्चे जब रात को लेटते तो इसी चिन्ता में व्याकुल रहते। फ़ख़रिया अब कालेज में पढ़ती थी। माता का विचार हुआ कि फ़ख़रिया अब पढ़ना-लिखना छोड़ दे और किसी दफ़्तर में नौकरी कर ले, परन्तु पिता असहमत था।

पिता कहता था—मेरे कई मित्रों ने परिस्थितियों से विवश होकर यही मार्ग अपनाया है। किसी ने अपनी स्त्री को किसी ने अपनी लड़की को दफ़्तर में नौकर करा दिया है परन्तु मुझे यह बात एक आँख नहीं भाती। ख़ानम! वस्तुस्थिति तुम से छिपी नहीं है। मुझे भय है कहीं लड़की बिगड़ न जाये।

नादिरा ख़ानम ने अनुभव किया कि उसके पति ने घर के ४० वर्षीय सम्मान पर कुठाराघात किया। एकदम बिगड़ कर बोली—भगवान्! कभी ऐसा हो सकता है? उसने मेरा पवित्र दूध पिया है, उसका पवित्र रक्त है, उस पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ सकता। वह स्वयं समझदार है। अन्य स्त्रियाँ और लड़कियाँ भी तो काम पर जाती हैं और हम भी देख-भाल रखेंगे।

पिता—मैं यह सब कुछ मानता हूँ और मुझे लड़की पर विश्वास है परन्तु क्या करूँ ज़माना नित्य बदल रहा है। किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। फ़खरिया नवयौवना है, अनुभवहीन है, मैंने अच्छी-अच्छी स्त्रियों को फिसलते देखा है।

पति-पत्नी में पर्याप्त समय तक यही झगड़ा चलता रहा और अन्त में फ़ख़रिया को नौकरी करनी ही पड़ी। वह टाइप नहीं जानती थी और हाथ से ही लिखती थी। उसके अफ़सर ने कहा वह टाइप करना शीघ्र ही सीख लेगी। एक वर्ष पर्यन्त फ़ख़रिया का व्यवहार घर तथा दफ्तर में बहुत अच्छा रहा। वह अपना सारा वेतन माँ को सौंप देती और जो जेब ख़र्च मिलता उसे भाइयों की शिक्षा पर ख़र्च कर देती। माता-पिता उसके इस व्यवहार से बहुत प्रसन्न थे। दफ्तर में भी उसके सौजन्य की धाक थी और समाज में भी उसका मान था।

दफ्तर में इसकी एक सहेली थी जिसका नाम 'परी' था। इसके साथी इसे "परीख़ानम परी" कहा करते थे। इसके घर कोई उत्सव था इस कारण वह दफ्तर से फ़ख़रिया के साथ लौटी ताकि फ़ख़रिया की माता से जाने की आज्ञा ले ले। माता ने जब फ़खरिया की इच्छा देखी तो उसने भी अनुमति दे दी। फ़खरिया ने बढ़िया वस्त्र धारण किये और खूब सज-धज कर घर से चल दी। उसके जाने के उपरान्त माता कुछ चिन्ताग्रस्त हो गयी। एक विचार आता और एक जाता। अन्त में उसने यह विचार कर हृदय को सान्त्वना दी कि लड़की को सदा तो अपने पास रख नहीं सकते और न ही यह उपयुक्त भी है। समय पलट चुका है और फिर फ़ख़रिया का सारा जीवन पुस्तकें पढ़ने में बीता है, कभी-कभी का मनोरंजन भी आवश्यक है।

फ़खरिया के लिये यह सहभोज बिलकुल एक नई वस्तु था। इस सहभोज में उन लड़कियों के अतिरिक्त जो उसके दफ्तर में नौकर थीं अन्य लड़के-लड़कियाँ भी उपस्थित थे जिनसे यह अपरिचित थी। परी का कौटुम्बिक निवासस्थान मैनी नगर में था। मकान के सब दरवाज़े शीशे के थे और पर्दे का कोई प्रबन्ध नहीं था। बीच के हाल में एक बहुत बड़ी खाने की मेज़ सजी हुई थी। उस पर चाय का सामान तथा स्वादिष्ट भोजन की प्लेटें सजी हुई थीं। फ़ख़रिया को यह वस्तुएँ अधिक प्रिय न थीं। उसे मक्खन बहुत प्रिय था और वही वहाँ पर नहीं था। रेडियो बोल रहा था और लड़के-लड़कियाँ स्वच्छन्दता से नाच-गा रहे थे। कुछ लोग जो पृथक्-पृथक् बैठे हुए थे एक साथ आ बैठे और सिनेमा के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

शाधूल के समय फख़रिया को घर लौटने की चिन्ता हुई। उसका मन मलिन होने लगा परन्तु वह विवश थी। भरी सभा में प्रत्येक से विदा लेना उसके बस की बात न थी।

इस प्रकार के सहभोज नित्य प्रति दिन होने लगे। अब फख़रिया माता की आज्ञा लेने की भी आवश्यकता नहीं समझती थी। शुक्रवार को एक न एक प्रोग्राम अवश्य रहता था। वह बस माता से कह जाती कि यदि विलम्ब हो जाय तो चिन्ता न करें।

माता का सन्देह बढ़ने लगा परन्तु वह पिता को सदा ही विश्वास दिलाने का प्रयास करती रहती। लड़की का अपराध होने पर भी वह उसी का पक्ष लेती। पिता चुप हो जाता परन्तु उदास रहता। लड़की का बड़ी शीघ्रता से कायापलट हो रहा था। नित्य रात को शृङ्गार करती तथा कपड़े बदलती और वेतन का अधिकांश भाग अपने ऊपर ही खर्च करती, माता को नाम मात्र को ही कुछ देती। साधारण वस्त्रों आदि से घृणा करने लगी। घर में अन्यमनस्क सी रहती और संबन्धियों से कुछ खिंची-खिंची रहती। भोजन करते ही अपने कमरे में चली जाती और वहीं रहती। माता ने कई बार समझाना चाहा परन्तु अवसर नहीं मिला। फख़रिया की आकुलता, उसका गुनगुनाते रहना और आहें भरना, यह सब बातें देख कर माता की चिन्ता और भी बढ़ जाती थी।

अन्त में फख़रिया एक दिन खुल गई—मैं अपने साथियों की बराबरी नहीं कर सकती। वह बढ़िया मकानों में रहते हैं और जीवन के प्रत्येक आनन्द का लाभ उठाते हैं। मैं उन्हें इस कच्चे मकान तथा सकड़ी और अँधेरी गली में कैसे निमन्त्रण दे सकती हूँ। क्या नृत्य के समय थाली बजाऊँगी? क्या वे इस गन्दे प्रांगण में नाचें? मैं लज्जा से मरी जा रही हूँ। मुझे इस जीवन से घृणा है। यह घर है अथवा मुर्गीखाना? मुझ से तो बिल्लियाँ ही अच्छी हैं जो स्वेच्छा से घूम-फिर सकती हैं और हर प्रकार स्वतन्त्र हैं।

नादिरा खानम यह बातें सुन कर आश्चर्यचकित रह गयी। वह भयभीत होकर दिल में कहने लगी—अमीर लड़के-लड़कियों से मेल-जोल का यह परिणाम कि अब वह अपने घर को मुर्गीखाना समझती है। वह बिल्लियों के समान स्वच्छन्द विचरना चाहती है। इसका तात्पर्य? हे भगवान्! हमें यह दिन भी देखना पड़ा कि लड़की अपने मुँह से वर माँगे। तभी यह खोई-खोई सी रहती थी।

नादिरा खानम ने अपने पति से कहा कि फख़रिया अब हमारे हाथों से निकली जा रही है। भगवान् भला ही करे। अब अच्छा यही होगा कि इसका विवाह कर दिया जाय।

अन्ततः एक दिन फख़रिया ने अपनी सहेली द्वारा माता के पास कहला भेजा कि मुझे मैनी नगर में एक सुन्दर सा मकान मिल गया है। अपने मित्र के साथ वहीं रहूँगी और इच्छानुकूल जीवन व्यतीत करूँगी। अब मैं स्वतन्त्र हूँ। मेरा सब सामान भिजवा दीजिये।

नादिरा ख़ानम ने जब यह सुना तो किंकर्तव्यविमूढ़ सी खड़ी रह गई। आखिर फख़रिया की सहेली के साथ उसके पास गई और फख़रिया से मिल कर फूट-फूट कर रोई। फख़रिया से बोली—बेटी ऐसा न करो। तुम्हारे सिर पर इस समय शैतान सवार है, उसके जाल में न फँसो। माता-पिता को कैसे त्याग रही हो? सन्तान का पालन-पोषण करके बड़ा करना कोई खेल नहीं है। पिता के हृदय को न दुखाओ, भाइयों को लज्जित न कराओ। हम सब पर दया करो और हम से अधिक स्वयं अपने ऊपर। जो मार्ग तुमने अपनाया है वह श्रेयस्कर नहीं, बाद में पछताओगी।

माता की ऐसी शोचनीय अवस्था देखकर फख़रिया का दिल पसीज गया। वह अपना विचार पलटने ही वाली थी कि उसे अपने युवक प्रेमी का ध्यान आ गया जिसने अपनी मदभरी बातों से इसका दिल मोह लिया था और एक आनन्दमय जीवन का प्रलोभन दिखाया था। उसने कहा था कि हम सिनेमा और नाच-घर जाया करेंगे और आनन्द से जीवन बितायेंगे। उसने अपने माता-पिता से कह दिया था कि मुझे फख़रिया से प्रेम है और उसी को जीवन-साथी बनाना चाहता हूँ।

फख़रिया एकदम खड़ी हो गई और माता से बोली--माँ मुझे छोड़ दो। तुम मुझे नहीं समझ सकतीं। तुम लोग पुराने ढंग के हो, तुम्हारे मन और मस्तिष्क सभी पर पुराने विचारों का प्रभुत्व है। तुम हमें नहीं समझ सकतीं। हमारे तुम्हारे मध्य मीलों लम्बी खाड़ी है। मैं पुराने लोगों के साथ नहीं रह सकती।

नादिरा खानम काँप गई। उठी और चल दी। दिल में कहती थी कि मुझे तो मौत आ जाये। बदनामी के इस जीवन से मरना अच्छा है।

(तुर्की समाचारपत्र 'ओलोस' से अनूदित)





प्रभाकर माचवे

चाँद और कवियों का चोली-दामन का सम्बन्ध है। शेक्सपीयर ने इसीलिए कवि, प्रेमी और 'ल्यूनैटिक' (चन्द्र-पीड़ित=पागल) तीनों को कल्पना से ठसाठस भरा हुआ माना था। अप्पय दीक्षित ने तो उपमा और रूपकों के उन्नीस प्रकारों के अलंकारों को सिर्फ—'मुख चन्द्रमा के समान है; चंद्र है कि मुख है, मुख नहीं चंद्रमा है; मुखचंद्र, मुख देख कर चकोर पागल हो गया! वगैरह-वगैरह एक ही वाक्य को विभिन्न रूपों में नचाया है। रीतिकालीन कवियों ने कहा है कि परमात्मा ने राधा को गढ़ा; उसमें से बची-खुची मिट्टी का लड्डू चाँद बना और 'कन झारे वे तारे हैं!' सूफी कवि जायसी कहते हैं—

'गह दमजे अन्देशए माहे जनी।
यह ब फ़ल्क बीनिश्रो आहेज़नी॥

(अर्थात्—कभी तो तू किसी चंद्रमुखी के ध्यान में रहता है और चंद्रमा की ओर देखकर आहें भरता है।) शायद इसी कारण हिन्दी के एक आधुनिक कवि त्रिलोचन ने बड़ी बढ़िया बात कही है—'अगर चाँद मर जाता, तो क्या करते ये सब कवि?'

चाँद के बारे में संस्कृत कवियों ने जितने उत्साह से काम लिया है शायद ही कोई उतना उत्साह दिखाये। सागर-मंथन के समय चंद्रमा एक 'रत्न' के रूप में बाहर निकला, हलाहल के पश्चात्। शिवजी ने विष तो गले में अटका ही लिया था, चाँद भी अपनी जटा में खटका लिया—तब शायद चंद्रशेखर को पता नहीं था कि १९४७ में भारत के जो दो उपनिवेश होंगे; उनमें के एक हिस्से का झंडा हरा 'हिलाल' (दूज का चाँद) युक्त होगा। 'दूज के चाँद' से मुझे बात याद आ गई—रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बच्चों की कविता की अंग्रेज़ी किताब का तो यह नाम है ही परन्तु 'हिमालय' (१०) में समाजवादी नेता जयप्रकाशनारायण की एक कहानी भी इसी शीर्षक से विज्ञापित हुई है। समाजवादियों के बारे में इसीलिए कहते हैं कि आकाश का चाँद उनके हाथों आ गया। चंद्रमा की उत्पत्ति सागर से हुई, तो कोई कहते हैं वह अत्रि ऋषि के नेत्र से हुई—

'अयं नेत्रादत्रे रजनि रजनी वल्लभ इति
भ्रम: कोऽयं प्रज्ञापरिचय पराधीन मनसाम्।'

चंद्रमा के रिश्ते भी बहुत मज़ेदार हैं। सागर पिता, चंद्र पुत्र: इस कारण से जहाँ क्षितिज पर चंद्रमा का उदय हुआ कि कुमुदिनी अपने प्रियतम का मुख देखकर धीरे-धीरे उसी प्रकार खिलखिलाने लगती है; जैसे साबुन के विज्ञापनों में सिनेमास्टारें अपने नकली दाँतों का प्रदर्शन करती हैं। परन्तु कुमुदिनी अकेली चंद्रमा की प्रेयसी नहीं स्वयम् पूर्व दिशा चंद्र से प्रेम-क्रीड़ा करती है—तभी पूरब वाले कुछ सपनीली चाँदनी में ही जैसे विचरते रहते हैं। पूर्व दिशा बड़ी रँगीली है: रात के आरम्भ में वह चंद्रमा से प्रणय करती है: रात बीती कि वह सूर्य के गले जा पड़ती है; बेचारा चाँद अपनी प्रिया का इस प्रकार दूसरे के बाहुओं में विश्राम पाना और मुँह लाल होना देखकर मनोभंग के कारण तेजहीन, फीका मुँह लिये लौट जाता है। उसका चेहरा जैसे फक हो जाता है।

'संश्लिष्टा सानुरागं स्वकर परिचय प्राप्त भूरि प्रसादा
या पूर्वा मुक्तपूर्वा रविकरकलितां तामुदीक्ष्यामृतांशु:।
निस्तेजा: पश्चिमाब्धौ प्रविशति हि सतां दु:सहो मानभंग:
किं वक्तव्यं सितांशो: स तु सकलसतां मण्डलस्यापि नेता॥

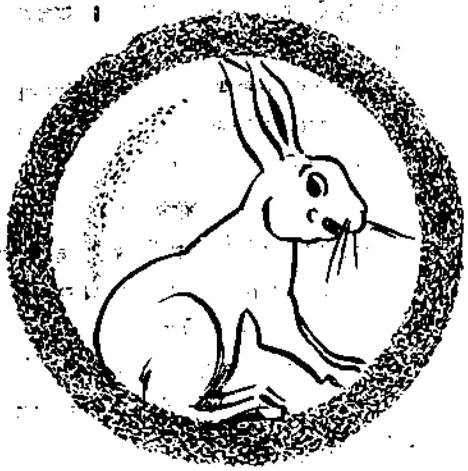
चन्द्रमा की एक प्रिया रात भी है। इसी से वह रजनीनाथ, निशापति, राकेश कहलाता है। चाँद और रात दोनों का आकाश के कुंज में मिलन होता है। चाँद उसके काले केशपाश अपनी किरणों की अंगुलियों से संयमित करता है और कुछ प्रेम व्यक्त करने में, उस रात का काला वस्त्र खिसक पड़ता है—चाँदनी फैलने का यह संस्कृत कवि का वर्णन बेहद रोमैंटिक है:

अंगुलीमिरिव केशसंचयं, संनियम्य तिमिरं मरीचिभिः ।
कुडमलीकृत सरोजलोचनं चुम्बेतीव रजनीमुखं शशी ॥
नभोलताकुजमुपागतायाः प्रमोदपर्याकुलतारकायाः ।
निशांगनायाः स्फुरताकरेण शशीः तमः कंचुकमुन्मुमोच ॥

सावधान, कहीं ऐसा वर्णन, ऐ आधुनिक कवि, तू मत कर देना। तुझे अश्लील-अश्लील कह कर आलोचक पत्थरों से पीटेंगे; मगर संस्कृत कवि सु-संस्कृत थे, उन्हें सब कुछ क्षम्य है। वे हमारी प्राचीन संस्कृति के कलंकविहीन चन्द्रमा के अक्षुण्ण राकातेज के एकमात्र रक्षक······।

चन्द्रमा को पुराणों में अमृत का घड़ा भी माना गया है। चाँद जो बढ़ता और घटता है उसका एक कारण यह है कि एक पखवारे में यह घड़ा भरता है (अमृत का नल किस वाटरवर्क्स से आता होगा पता नहीं ?) और एक-एक देवता उसे पी-पीकर खाली किये जाते हैं—सो बेचारा दुबला होता जाता है। अपनी आँखों से तो पूर्णचन्द्र और अन्तकालीन सूरज एक से मोटे जान पड़ते हैं; मगर वैज्ञानिक बतलायेंगे कि चाँदमियाँ का 'व्यास' (घेरा) अपनी ज़मीन के सिर्फ एक चौथाई है। चन्द्रमा, जो कि पृथ्वी से २,३९,००० मील दूर हैं और तिस पर भी सब से पास हैं—और जिनके नाम से अंग्रेज़ी 'मन्थ' या माह शब्द हुआ २७ दिन ७ घण्टे ४३ मिनिट १४ सैकिंड में हमारी पृथ्वी के आसपास पूरा चक्कर काटते हैं। बाबिलोनी लोग समझते थे कि चाँद के दो पहलू हैं। एक काला, एक सफेद और वह मौज के अनुसार अपना 'साँवल-उज्ज्वल' रूप हम दुनियावालों को दिखाता है। जार्ज डार्विन ने अनुसन्धानों से यह पता लगाया है कि चाँद की यह हरकत कि वह पृथ्वी के हृदय समुद्र में यों भावोर्मि जागृत करे, अवश्य पृथ्वी की घूमने की गति को कुछ मन्द करती होगी। इस प्रकार पृथ्वी के दिन को चाँद के दिन के बराबर तक आने में सिर्फ ५०,०००,०००,००० वर्ष लगेंगे। उस समय के पश्चात् हम देखेंगे कि चाँद हमारे बहुत पास आ गया है। बारह हजार-मील की समीपता के कारण पृथ्वी पर प्रचण्ड ज्वार उठेंगे, चाँद टुकड़े-टुकड़े हो जायगा, और चाँद के आसपास भी शनि की भाँति छोटे छोटे उपग्रह पैदा हो जायँगे। वैसे चाँद खुद ही पृथ्वी का एक नौकर मात्र है—लतीनी [illegible] ।





भाषा में उपग्रह को 'सैटेलस' अर्थात् नौकर कहते हैं। वैसे ही वैज्ञानिक सुझाते हैं कि एक ज़माने में चाँद अपने घर का ही एक रहने वाला था। यह घर से दूर होकर, उसने अपना अलग 'चाँदिस्तान' बसा लिया, वर्ना पृथ्वी-चाँद कभी एक ही धातु के बने थे।

चन्द्रग्रहण भी एक अज़ीब चीज़ है। भूगोल का छठी जमात का विद्यार्थी जानता है कि यह ग्रहण सूरज-पृथ्वी-चाँद के एक रेखा में आने से और पृथ्वी की छाया चन्द्र पर गिरने से होता है। चन्द्रमा का खग्रास ग्रहण अधिक से अधिक १ घण्टा ५० मिनिट रह सकता है। चाँद को इतना ही समय क्यों पसन्द आया यह पता नहीं; पर अक्सर डेढ़-दो घण्टों तक कुछ-कुछ इंजेक्शनों का असर रहता है। डाक्टर राहु चन्द्रमा के साथ कुछ ऐसा ही करते होंगे। रोगियों को योंही नहीं 'पांडुर-मुख' कहा जाता। परन्तु संस्कृत कवि सब चीजों की हद कर देते हैं। ग्रहण का समय हो गया है, हे चन्द्रानना सुन्दरियो, अपने आपको सँभालो ! घर के बाहर कहीं मत आना, वर्ना राहु तुम्हें ही चाँद समझ कर खा जायगा—

प्रविश झटिति गेहं मा बहिस्तिष्ठ कान्ते
ग्रहणसमयवेला वर्तते शीतरश्मेः ।
तव मुखकमलाङ्कं वीक्ष्य नूनं स राहु—
ग्रसिति तव मुखेन्दु पूर्णचन्द्रं विहाय ॥

चाँद पर एक दाग़ होता है। फ़ारसी कवियों ने जैसे मुख पर के तिल पर अत्यधिक कहा हैं चन्द्र की इस कलंक शोभा ने भी सोचने-वालों को कल्पनाशीलों को कम मसाला नहीं दिया है। यूरोप में इस दाग़ को लेकर निम्न किम्वदंतियाँ प्रसिद्ध हैं—कोई कहते हैं एक आदमी इतवार को लकड़ियाँ बीनने वहाँ गया, सो वहीं रह गया। कोई उसे 'चाँद के हृदय में की सुन्दरी मानते हैं, कोई 'पुस्तक पढ़ने वाली लड़की' मानते हैं, तो कोई उसे कर्क (केंकड़ा) कहते हैं, तो कोई उसे गधा समझते हैं। ये सब चित्र देखने हों तो Marvels of Mysteries of Science में पृष्ठ ३३ पर चित्रकार ने बड़ी खूबी से बनाये हैं। मगर हमारे संस्कृत कवियों की कल्पनाशक्ति क्या आप कम उर्वरा समझते हैं ! सागरमंथन के समय चाँद जब बाहर आया तो उसे मेरुमंदार पर्वत का धक्का लग गया, वही जख्म का

दाग़ वहाँ बैठ गया सो बैठ गया। रोज रात को चाँद आकर अँधेरा निगल जाता है; उसके पारदर्शक उदर में से वही कलंक झलकता है। शृङ्गारचेष्टाओं के पश्चात् श्रान्त होकर चन्द्र की छाती पर सोई उसकी प्रिया रजनी है। किसी पापी की नज़र न लगे इसलिए विधाता ने चन्द्रमुख पर 'डिठौना' अंकित किया है। राहु के डर से चन्द्र के आश्रय में आया हुआ वह खरगोश या हिरन है।

'एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः।'

कालिदास तो यहां तक कहते हैं कि विधाता मूर्ख और आलसी है। क्या उर्वशी को बना सकता है? उसे तो चन्द्रमा ने ही बनाया है। बेचारे वैज्ञानिक! उस सुन्दर चन्द्रमुख पर के 'कज्जलबिंदु' को जेलिलीओ ने १६१० ईस्वी में ही 'मारे सरेनिटैटिस' (शान्ति-सरोवर), 'यारे इम्ब्रियम' (तुषार सागर) इत्यादि नाम दे डाले थे।

कुछ कवि मुख को चन्द्रमा की उपमा देकर सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहते हैं—'सचमुच में किसी आकर्णसरोजाक्षी के मुख को चन्द्रमा की उपमा देना मूर्खता है, पामरता है!' क्योंकि 'चन्द्र आख़िर है क्या?' एक साधारण जलबिंदु! उस श्याम कोमल कपोल वाले की तुलना पानी की बूँद से भला हो सकती है?' एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहते हैं—'जब तुम पास होती हो तो भला इस चाँद को अपना मुँह दिखाने में खीज क्यों नहीं लगती। यदि चन्द्रमा को इस बात का गर्व है कि वह अमृत अपने पास रखता है तो उसे ज़रा जाकर कह देना कि 'दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्यस्येव बिंबाधरे!' (बिंबाधरों में ... अधिक अमृत है।) 'यह चाँद भिखारी है—सूरज से तेज मों... लावण्यवतियों के दर-दर घूमता है कि कुछ कान्ति उधार दे दें। यह कर्ज़दार है!' एक कवि उससे आगे बढ़ गए—'यों भटकते-भटकते चाँद को पता लगा कि वह निष्कलंक मुख चन्द्रमण्डल से कभी बढ़ ही नहीं सकता। तब व्रीड़ा के मारे निशापति पश्चिम समुद्र में डूब गये!' भर्तृहरि तो चिढ़ गए—'कवि सब मूर्ख हैं। मुख आखिर हाड़-माँस लार-कफ सब से भरा है, फिर भी ये पागल उसकी तुलना चन्द्र-बिंब से करके उसी काल्पनिक सौन्दर्यानन्द में मग्न हैं!' कैसा प्रगतिशील यथार्थवाद है!

एक कविजी इसी पृथ्वी पर स्वर्ग का अनुभव करते हैं। पद्माकर के 'गुलगुले गलीचे हैं, गिलमें गुलाब-जल', की भाँति, वे कहते हैं—'मेरे पास कालिदास के काव्यग्रंथ हैं, नववय की महिषी (रानी) है; शक्कर से भरा हुआ दूध का प्याला है (शायद यह कण्ट्रोल के ज़माने में लिखी कविता नहीं है; वर्ना—'अमृत के बदले में, बालम मटकिन्ने में गुड़ की चाय है! तिलोत्तमा—औ—उर्वशी—छवि को सिनेमास्टारों ने खींचा है!! कहता) सिर्फ कमी है तो शरच्चन्द्र के उदय की!! विरह में अगर चन्द्र का दर्शन कर लिया तो प्रबल उत्ताप से प्रेमिका जल कर मर भी जा सकती है। कालिदास का दुष्यन्त इसी प्रकार की शिकायत करता है। पति-विरह से झुलसी हुई यक्षी चन्द्र का मुँह देखने की भी हिम्मत नहीं करती; और महाश्वेता का प्रियकर पुण्डरीक चन्द्रदर्शन से मर गया—(यानी आत्म-हत्या का बहुत सुलभ और सस्ता उपाय है; पोटैसियम साइनाइड की भी ज़रूरत नहीं। पूनम के दिन उठे, चाँद देखा और बस सीधे यमलोक का टिकट कटा लिया।)



धन्य हो संस्कृत कवि! तुम्हारा चाँद आकाशविपिन का सिंह है, मदन का राजछत्र है; सुरांगनाओं का क्रीड़ाकन्दुक है; कामदेव की जादू की अँगूठी है; 'जयति कुमुदबन्धुर्बन्धुरश्चन्द्रबिंब!!' अब हटिये—चाँदनी फैलने लगी। त्यों ही वृक्षों में से झांक कर चन्द्रकिरणों को कमलदण्ड समझकर हाथी खाने लगे; कोई विलासिनी काम-केलि के पश्चात् मेरी रेशमी साड़ी ही तो यहाँ नहीं फैली है—ऐसे मधुर भ्रम में उस चाँदनी को उठाने लगी; कोई बिल्ली यह समझ कर कि मेरे आस-पास एक बड़ी भारी दूध की गगरी छलक कर फैल गयी है, अपने आस-पास चारों ओर चाटने लगती है। क्योंकि रेकार्ड उधर घिस गया है और वही कड़ी बार-बार दुहराता है—"ऐ चाँद! छुप न जाना!" या "चन्दा! देश पिया के जा!!"

स्वागत

'शेष'

आओ तो आज हिन्द में शोभा लिए हुए!
स्वागत में एक राष्ट्र है आशा लिए हुए!
आँखें बिछी हैं राह में सुषमा लिए हुए!
पुलकित हैं प्राण, प्राण की आभा लिए हुए!
कण-कण है आर्य-भूमि का रोमांच से तरल;
वन-वन है अप्सराओं की क्रीड़ा लिए हुए!
गौरव से जगमगा उठा अपना सदन-सदन;
मन मन है स्वाभिमान की गरिमा लिए हुए!
तुम आओ तो सुदेश में जीवन लहर उठे;
जन-जन है रामराज्य का सपना लिए हुए!
सुख, शक्ति, विश्वप्रेम, आत्मत्याग का प्रतीक;
हर्षित है आज राष्ट्र, तिरंगा लिए हुए!
जय हिन्द, वन्दे मातरम् से गूँज उठे गगन;
तुम आओ साथ 'शेष' की कविता लिए हुए!

***

प्रणय-पथ

'विनोद'

यह प्रणय पथ!
अधिकार क्या? तन-मन समर्पण हो चुका!
अब दुःख क्या? जब विरह-वर्षण हो चुका!
चल मैं चुका सामर्थ्य से अपनी अधिक;
अब ज्ञात भी होता नहीं चलना मुझे!
इतने पगों में शूल मेरे चुभ चुके;
अब ज्ञात भी होता नहीं चुभना मुझे!
चलना हमारा ध्येय है!
उर-अग्नि ही पाथेय है!
कर्त्तव्य ही सुख-शान्ति है कहना न इनको हृदय-पथ!
यह प्रणय पथ!
थकना रहे अज्ञात; कहता हूँ कथा—
इस प्रेम की? भूलूँ न पथ; सहता व्यथा!
इतनी निराशा मिल चुकी मुझको, जगत!
खलती नहीं है आज असफलता मुझे!
जब एक ही दर्शन मुझे सब दे गया—
तब चाह क्या? है सुखद व्याकुलता मुझे!
जीवन मिलन की कामना!
जीवन प्रणय की साधना!
तन विश्व के सुख के लिए; जीवन नहीं यह प्रलय-पथ!
यह प्रणय पथ!

(२२ पृष्ठ का शेषांश)

भारतेन्दु-युग के पूर्व के नाटकों के विषय की चर्चा करते हुए कहा गया है कि उस युग में अनूदित तथा मौलिक दोनों प्रकार के नाटकों का विषय मुख्यतः पौराणिक था, उस युग के नाटकों के विषय किसी न किसी रूप में राम और कृष्ण के जीवन से संबद्ध हैं। भारतेन्दु-युग में आकर नाटकों के विषय की परिमिति बढ़ी। पौराणिक विषयों की ओर तो इस युग के नाटककारों की दृष्टि गई ही, विषय की यह परम्परा तो पूर्व युग से चली ही आ रही थी। ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों की ओर भी तद्युगीन नाटककारों की दृष्टि गई। श्री राधाकृष्ण दास के 'मेवाड़ पद्मिनी' तथा 'महाराणा प्रतापसिंह' नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र का 'नीलदेवी' नाटक भी ऐतिहासिक है। लाला श्रीनिवासदास का 'संयोगिता-स्वयंवर' नाटक भी इसी कोटि में आता है। अभिप्राय यह कि उस युग में ऐतिहासिक वस्तु की ओर नाटककारों की दृष्टि गई।

'नाटक' नामक प्रबन्ध में नवीन नाटकों के उद्देश्य पर विचार करते हुए भारतेन्दु ने कहा है—'इन नवीन नाटकों की रचना के उद्देश्य ये होते हैं यथा—१ शृङ्गार, २ हास्य, ३ कौतुक, ४ समाजसंस्कार ५ देश-वत्सलता। नाटकों के इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुकूल विषय भी लिए गए। चौथे और पाँचवें उद्देश्य की पूर्ति सामाजिक नाटकों द्वारा हुई। यह सभी पर प्रकट है कि भारतेन्दु-युगीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति लोकोन्मुखी है। लोक व समाज पर इसकी दृष्टि विशेष जाती थी। इसी कारण उस समय समाज में फैली कुरीतियों के संस्कार वा निवारण को दृष्टि में रखकर भी उस युग में प्रभूत साहित्य निर्मित हुआ। देश-वत्सलता की पूर्ति के लिए इन लोगों ने प्राचीन भारत के गौरव की प्रतिष्ठा की ओर भी ध्यान दिया और प्राचीन भारत के सद्गुणों से देशवासियों को लाभ उठाने के लिए प्रेरित किया। अभिप्राय यह कि भारतेन्दु-युगीन नाटकों में सामाजिक विषयों की भी स्थापना हुई। इस युग के प्रायः सभी नाटककारों—भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र, श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट आदि ने सामाजिक नाटक लिखे। यहीं यह भी स्मरण रखना है कि सामाजिक नाटकों में ही हास्य, व्यंग्य और विनोद की संस्थिति विशेष रूप से हुई, जो उस युग के साहित्य के प्रमुख और प्रभावशाली तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों की निहिति के कारण उस युग के साहित्य में सजीवता के दर्शन होते हैं।

इस युग में एकाध नाटक ऐसा मिलता है जिसमें नाटक-रचनाशैली और विषय दोनों दृष्टियों से स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति (रोमांटिक-टेंडेंसी) अधिक उभरी हुई लक्षित होती है, तथा श्री निवासदास कृत 'रणधीर-प्रेम-मोहिनी' में। यह नाटक भारतीय नाटक-रचना-शैली के बंधन से मुक्त है, इसमें प्रस्तावना आदि नहीं है. यह भारतीय पद्धति के विरुद्ध दुःखांत भी है। इसकी कथा में भी स्वच्छन्द प्रेम है। इसे अंग्रेज़ी के प्रेम मिश्रित दुःखांत (कामेडी ट्रेजिडी) नाटकों के समान समझना चाहिए।

विषय-विस्तार के साथ ही भारतेन्दु-युग के नाटकों में इसके पूर्व युग में प्रचलित केवल शृङ्गार और वीर रसों के अतिरिक्त हास्य और करुण रसों की स्थापना हुई।

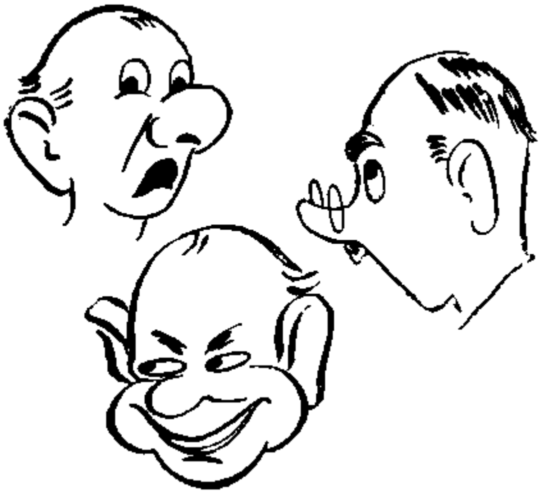
प्राचीन भारत की साहित्य-शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य 'शिवेतरक्षति' का साधन है। साहित्य के परम लक्ष्य ब्रह्मानंद सहोदर रसानुभूति के साथ जन, जीवन और समाज की मंगल की भावना भारतीय साहित्य से संबद्ध है। इसी कारण भारत के प्राचीन साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करने वाला पुरातन हिन्दी-साहित्य परोक्षतः और प्रत्यक्षतः भी जन, जीवन और समाज के मंगल पर सदैव दृष्टि रखता रहा। शिव और शिवेतरक्षति पर विशेष दृष्टि रखने के कारण यत्र-तत्र यह स्पष्टतः उपदेशात्मक भी हो गया। समाज की परिस्थितिवश एक समय ऐसा भी आया जब इस मंगल पर बहुत ही कम लोगों की दृष्टि गई। यहाँ हमारी दृष्टि शृङ्गार-काल पर है।

भारतीय नाटक-रचना के साथ तो मङ्गल-भावना विशिष्ट रूप से जुड़ी हुई है। इसके आदि में 'नांदी' और अन्त में 'भरतवाक्य' का विधान ही लोक में शिवत्व की स्थापना की कामना से प्रेरित है यदि भारतेन्दु-युग के बाद के नाटकों में नहीं तो उस युग के नाटकों में तो शिव का यह तत्त्व विशेष रूप से संनिहित था। अपने 'नाटक' नामक प्रबन्ध में भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र ने कहा—'नाटक रचना में उद्देश्यफल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है············नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।' भारतेन्दु-युग के प्रायः सभी नाटकों में उद्देश्य-फल की उत्तमता मिलेगी।

हिन्दी-नाटकों के लिए रंगमंच की समस्या भारतेन्दु-युग से ही चली आ रही है और वह आज तक भी हल नहीं हो पाई है। हिन्दी का अपना रंगमंच न होने के कारण अभिनय की दृष्टि से आज भी हिन्दी के कम ही नाटक सार्थक उतरेंगे। इसका कारण रंगमंच से नाटककारों का असंपर्क है, वे इसकी सुविधा-असुविधा से परिचित नहीं हो पाते।

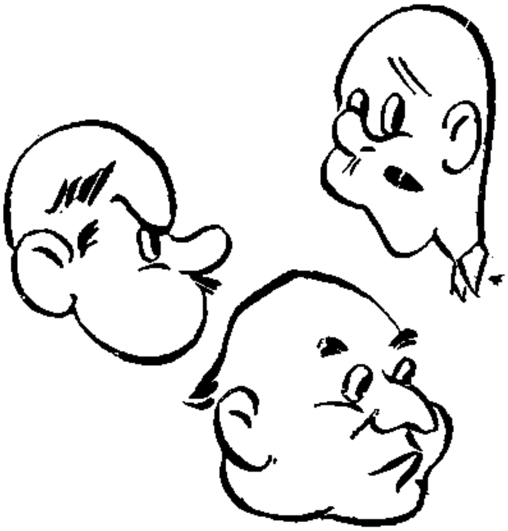
भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र ने अभिनय की दृष्टि से नाटकों के तीन भेद अपने 'नाटक' नामक प्रबन्ध में किये हैं—काव्यमिश्र, शुद्धकौतुक और भ्रष्ट। काव्यमिश्र नाटकों से उनका अभिप्राय सच्चे अर्थों में कहे जाने वाले नाटकों से है। 'शुद्ध कौतुक' से उनका मतलब कठपुतली आदि के खेल से है। 'भ्रष्ट' के विषय में वे कहते हैं—'भ्रष्ट अर्थात् जिनमें अब नाटकत्व नहीं शेष रहा है यथा भाँड, इन्द्र सभा, रास, यात्रा, लीला और झाँकी आदि। पारसियों के नाटक, महाराष्ट्रों के खेल यद्यपि काव्यमिश्र हैं तथापि काव्यहीन होने के कारण वे भी भ्रष्ट ही समझे जाते हैं।' भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र की दृष्टि में पारसी कंपनियों के नाटकों का कितना महत्त्व था यह इस उद्धरण से स्पष्ट है और इन कंपनियों की चाल उनके युग में ही नहीं उनके बाद के युग में भी किसी न किसी रूप में चलती रही। पारसी कंपनियों द्वारा अभिनीत नाटकों का रूप देखें। 'नाटक' नामक प्रबन्ध में भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र कहते हैं—'काशी में पारसी नाटकवालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यन्त खेमटे वालियों की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक-मटक कर नाचने और 'पतरी कमर बल खाय' यह गाने लगा तो डाक्टर थीबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान् यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।'

रंगमंच के असंपर्क अथवा भ्रष्ट रंगमंच के परिचय के कारण भारतेन्दु-युग के कम ही नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल उतरेंगे। कुछ कथोपकथन मात्र है, कुछ संलाप की भाषाओं का चिड़ियाघर है, कुछ में स्वागत आदि के अतिशय का दोष है, आदि। फिर भी रंगमंच की दृष्टि से उस युग के कुछ नाटक सफल अवश्य उतरते हैं। ××



हिन्दी में हास्य-रस

सत्यवती



साहित्य और समाज का आपस में अविच्छेद सम्बन्ध होता है और यही कारण है कि मनुष्य के जीवन में हमें जिस प्रकार तरह तरह के भाव दिखाई देते हैं उसी प्रकार साहित्य में भी उनकी अभिव्यक्ति होती रहती है। विभिन्न भाव ही पुष्ट होकर रस रूप धारण कर लेते हैं। भारतीय आचार्यों ने इस विषय पर बहुत विचार किया है और साहित्य में आने वाले रसों का वर्गीकरण किया है। पृथ्वीराज रासो आदि प्राचीन वीर-काव्यों तक में इस रस का पर्याप्त समावेश हुआ है।

कबीर साहब ने तो इस रस को निराले ढंग से ही अपनाया है। शिक्षा और उपदेश की बातों को हृदयंगम कराने के लिये भी उन्होंने हास्य को अपनाया है। उन्होंने एक स्थान में कहा है 'अरे इन दोउन राह न पाई।' आपने हिन्दू और मुसलमान दोनों की मीठी चुटकी ली है। देखिये कितनी दूर तक आप पहुँच गये हैं:—

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीसि खाइ संसार॥

मूर्ति-पूजा का तो खंडन इस प्रकार किया ही गया है, उन्होंने मस्जिद के विषय में भी ऐसे ही वाक्यों का प्रयोग किया है—

कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय॥

अर्थात् स्थान-स्थान पर आपके लिखे हास्य-रस के अनेकों उदाहरण मिलेंगे।

हास्य की दृष्टि से खुसरो की मुकरियां और पहेलियां भी विस्मरणीय नहीं। मुकरियों का एक नमूना देखिये :—

टट्टी तोड के घर में आया,
अरतन बरतन सब सरकाया,
खा गया पी गया दे गया बुत्ता।
ए सखि साजन, ना सखि कुत्ता॥

सूरदास जी जैसे भक्त कवि ने भी अपनी रचना में हास्य को यथेष्ट स्थान दिया है। आप अपने प्रभु कृष्ण से प्रेम-भक्तिमय हास्य करने से नहीं चूकते। अष्टछाप के आठों कवियों के दरबार में काव्य-चर्चा के समय कितने कहकहे लगते होंगे, इसका तो अनुमान लगाना भी कठिन है। सूरदास जी कृष्ण जी के मुख से कहलाते हैं:—

ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो,
मैया मैं नहिं माखन खायो।

हमारे महाकवि तुलसीदास जी ने हास्य-रस का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। यही नहीं अकबर के नव रत्नों में प्रसिद्ध बीरबल बड़े विनोदी थे। आपकी उक्तियां और चुहल की प्रशंसा सभी हृदय से करते हैं। आपकी फ़बतियों पर बड़े-बड़े दरबारोंमें आज भी हँसी की फुहारें चल पड़ती हैं।

केशवदास, रहीम, बिहारी आदि की रचनायें भी हास्य-रस से अलंकृत हैं। १८ वीं शताब्दी में प्रीतम कवि ने 'खटमल बाइसी' नामक पुस्तक लिखी थी। हास्य-रस की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में यह प्रथम उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रायः साहित्य के प्रत्येक अंग पर प्रकाश डाला है। हास्य के तो आप विशेष प्रेमी थे। होली आदि के अवसरों पर आप हास्य की सामग्री बड़े शौक से एकत्र करते थे। आपने 'चना जोर गरम' और 'चूरन बड़ा मसालेदार' के नमूने के अनेकों लटके बनाये थे। जिससे वे स्वयं हँसते थे और सब को हँसाते थे।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र की रचनाएँ तो हास्य-रस से सराबोर होती थीं। अपनी बुढ़ापा शीर्षक कविता में मिश्र जी ने वैराग्य की ओर ले जाने वाले बुढ़ापा जैसे विषय को हास्य का विषय बनाकर अपनी कला-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। आपके लिखे गद्य और पद्य दोनों ही व्यङ्ग से परिपूर्ण हैं। उन्हें तो बस पढ़ते जाइये, कभी तृप्त न होंगे, न छोड़ने को मन ही चाहेगा।

कविता कामिनी कान्त नाथूराम जी की 'वायस विजय' में हास्य-रस पर्याप्त रूप में है। आप अपनी ग्रामीण भाषा में हास्य-रस की कविता करते थे। आपके हास्य की बानगी लीजिये—

ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर दाढ़ी मूंछ।
वाटर बाईसिकिल के द्वारा, बिना गाय की पूंछ।
मरों को पार उतारूंगा, किसी से कभी न हारूंगा।

अर्वाचीन कवियों में हास्य-रस के विभिन्न प्रकार के लेखक मिलते हैं।-जिनमें एक श्रेणी ऐसे लेखकों की है जो हास्यजनक नामों के द्वारा हास्य की सृष्टि करते हैं। श्री जे० पी० श्रीवास्तव इस प्रकार के प्रमुख लेखकों में से हैं, आपका हास्य साधारण जनता के लिये है। सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरुद्ध आपने हास्य के अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया है।

दूसरे लेखक वे हैं, जिनका हास्य सोद्देश्य और शिक्षाप्रद होता है, साथ ही एक विशेष प्रकार का हर्ष, आनन्द, मस्ती और गुदगुदी उत्पन्न करने वाला होता है। इस प्रकार के लेखकों ने जनता की ही भाषा में लिखा है। महाकवि चच्चा की रचनाएँ इसी कोटि की हैं—

'पिल्ला लीन्हें गोद में, मोटर भई सवार,
अली भली ढूंढन चलीं, किये समाज सुधार।
किये समाज सुधार, हवा योरप की लागी,
शुद्ध विदेशी चाल, ढाल सों मति अनुरागी।
मियां मचावैं शोर, करैं अब नोबा तिल्ला,
पुत्र धाय की गोद, खिलावें बीबी पिल्ला॥

कला की दृष्टि से हरिशंकर शर्मा जी का लिखा हुआ 'चिड़िया घर' उत्कृष्ट है। सुनिये उनके 'करम फोड़ कम्बख्त राम' क्या रोना रो रहे हैं:—

'लेकर कर्ज किया व्यापार, बेचे बिस्कुट, सेब अनार,
किये न लोगों ने पेमेन्ट, घाटा सहा सेंट परसेंट॥

स्वर्गीय पण्डित बदरीनाथ भट्ट जी ने भी इस ओर लेखनी उठाई थी और इसमें बहुत सफल हुए हैं। आपने विवाह, विज्ञापन, मिस अमेरिकन आदि प्रहसन लिखे। हास्य रस के साहित्य में 'दुबे जी की चिट्ठियाँ' अमर हैं। चुहचुहाता हास्य और उसमें समाज सुधार का पुट तथा शिक्षा की मृदु भावनायें—सोने में सुगन्ध इसी का तो नाम है। बाबू अन्नपूर्णानन्द जी भी हास्य के इने गिने प्रसिद्ध लेखकों में से हैं। मेरी हजामत और ब्राह्मण भोजन उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। निराला जी भी हिन्दी के अच्छे हास्य लेखकों में हैं यद्यपि हास्य लेखक के रूप में वे कम विख्यात हैं। काशी के चोंच जी की भी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। काशी के बेधड़क जी समय के अनुकूल चुभती हुई रचनाएँ लिखने में बड़े कुशल हैं। श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने आधुनिकता के पीछे पागल होने वालों की अच्छी खबर ली है।

आधुनिक गद्य लेखकों में कुछ लेखकों ने हास्य रस की रचना में अच्छी विशेषता प्राप्त की है। श्री राधाकृष्ण जी एवं जहूर बख्श जी हास्य की अच्छी कहानियाँ लिखते हैं। प्रभाकर माचवे के लेख भी अपने ढंग के बहुत ही अच्छे होते हैं।

हिन्दी में हास्य रस की अनेक पत्रिकायें भी प्रकाशित होती रही हैं। इनमें 'मतवाला' का नाम स्मरणीय है। इसके बन्द होने पर इस प्रकार का ऐसा अच्छा दूसरा पत्र हिन्दी जगत् में नहीं निकला। श्री शिवपूजन सहाय, नवजादिक लाल श्रीवास्तव तथा पांडेय बेचन शर्मा उग्र आदि इसके सम्पादक-मण्डल में थे। इस पत्र ने हास्य की रचनाएँ ही नहीं दीं अपितु बहुत से नये हास्य लेखक भी पैदा किये। इस समय मदारी, नोकझोंक और निराला हास्य रस के पत्रों में उल्लेखनीय हैं। अन्य पत्रों में भी हास्य के कालमों द्वारा पाठकों का अच्छा मनोरंजन हो जाता है। आज, संसार, सन्मार्ग, विश्वमित्र, देशदूत, योगी आदि पत्रों में इस प्रकार की अच्छी सामग्री मिल जाती है।

श्री रामेश्वर 'करुण' के निधन से हिन्दी में एक ऐसे उत्कृष्ट कोटि के हास्यकार और व्यङ्गकार का अभाव हो गया है जिसकी पूर्ति कठिन है। लबार लाहौरी के नाम से आपने हास्य रस की अच्छी सामग्री दी है। राजनीतिक विषयों पर तो आपकी रचनाएँ बहुत ही मर्मस्पर्शी होती थीं। इनके अतिरिक्त श्री बेढब बनारसी, श्री बंसीधर शुक्ल, श्री जयनाथ नलिन आदि साहित्यिक अपनी हास्य रस की रचनाओं के लिये विख्यात हैं।

हास्य रस के ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में भी हुआ है। डा० लक्ष्मण स्वरूप जी द्वारा अनुवादित मोलियर का 'बनिया चला नवाब की चाल' श्री धन्यकुमार जैन द्वारा अनूदित परशुराम के 'भेड़िया धसान' और 'लम्बकर्ण' हास्य रस के अच्छे ग्रन्थ हैं।

फिर भी यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी में अभी हास्य रस की रचनाओं की जितनी आवश्यकता है उसकी पूर्ति नहीं हो रही है और इस क्षेत्र में अभी विकास की बहुत अधिक अपेक्षा है।

* *

नव वर्ष का उपहार

पिछले वर्षों की भाँति हम नव वर्ष के उपलक्ष में इस वर्ष भी अपने पाठकों को एक सचित्र कलेंडर उपहार में दे रहे हैं।

यह कलेंडर सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री अनिलकुमार राय चौधरी के 'शकुन्तला-जल-सिंचन' नामक नवरंगे चित्र से अलंकृत है जिसकी छपाई मुद्रण-कला की आधुनिकतम आफ़सेट विधि से हुई है और जो चित्रकला और मुद्रण-कौशल का एक सुन्दर नमूना है।

जनवरी-अंक में अपने कलेंडर की प्रति अवश्य देखें। —सम्पादक

भारत और अमेरिका

डाक्टर सैयद हुसैन

विश्व-युद्ध के कारण पूर्व तथा पश्चिम के राष्ट्रों में एक नवीन तथा निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया और उन्होंने एक दूसरे की सत्ता का नवीन अनुभव प्राप्त किया। भारत की राजनैतिक तथा भौगोलिक स्थिति ने धुरी राष्ट्रों के दोनों मोर्चों पर सफलतापूर्वक आक्रमण करने की दृष्टि से उसे एक महत्त्वपूर्ण सैनिक अड्डा बना दिया। इस कारण भारत का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया। उदाहरणार्थ केवल भारत से ही युद्ध-जर्जर चीन को सहायता पहुँचाना संभव था और भारत से ईरान द्वारा रूस को आवश्यक सामग्री भेजी जा सकती थी।

भारत के सैनिक महत्व तथा एशिया के आर्थिक ढाँचे में उसके प्रमुख स्थान को सब से पहले समझने वाले दूरदर्शी राजनीतिज्ञ अमेरिका के राष्ट्रपति स्व० श्री० रूज़वेल्ट थे। इस प्रकार श्री० रूज़वेल्ट अमेरिका के पहले राष्ट्रपति थे जिन्होंने भारत तथा अमेरिका के मध्य सीधे राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किए और पहले अपना एक वैयक्तिक दूत भेजा और बाद में एक अन्य दूत भेजा जिसे राजदूत के अधिकार प्राप्त थे। ये दोनों मनुष्य—कर्नल लुई जानसन तथा श्री विलियम फिलिप अमेरिका के नागरिक तथा राजनैतिक जीवन में एक प्रमुख स्थान रखते थे और इन्होंने अपने प्रारम्भिक कार्य में काफी सफलता प्राप्त की। उस समय से अब तक भारत में महान् राजनीतिक परिवर्तन हो गए हैं जिनके परिणामस्वरूप प्रथम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। भारत की राष्ट्रीय सरकार (अन्तरिम) ने पदारूढ होते ही अमेरिका के साथ दौत्य सम्बन्ध स्थापित किए और दोनों सरकारों ने अपने-अपने राजदूत नियुक्त किए। भारत सरकार ने अपना राजदूत पक्के देशभक्त, अनुभवी राजनीतिज्ञ, सुसंस्कृत तथा साहित्य-प्रेमी श्री आसफ अली को चुना। भारत सरकार की दृष्टि में इस पद का कितना महत्व है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि श्री आसफ अली उस समय अन्तरिम सरकार के मन्त्री थे और उन्हें उस स्थान से अवकाश दे कर अमेरिका भेजा गया था। हाल ही में भारत में अमेरिकन राजदूत श्री हेनरी ग्रेडी की नियुक्ति भी हो गई है।

इन ऐतिहासिक नियुक्तियों से समस्त एशिया तथा पश्चिमी संसार के सम्बन्धों में एक नये युग का प्रादुर्भाव होता है। एक शत से भी अधिक समय से राजनीतिक क्षेत्र में भारत को शेष संसार से पृथक रखा गया था। परन्तु अब वह युग बीत गया। राष्ट्रीय सरकार के विदेश मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने घोषणा कर दी है कि अब भारत एशिया के समस्त पड़ौसी राष्ट्रों तथा शेष सभ्य संसार के साथ सीधे राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है। मित्र राष्ट्र संघ के न्यूयार्क अधिवेशन में श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के नेतृत्व में तथा यूनेस्को के पेरिस अधिवेशन में प्रो० एस० राधाकृष्णन् के नेतृत्व में भारतीय शिष्ट मंडल ने जो कार्य किया है उससे संसार की राजनीति में भारत की अभिरुचि का परिचय मिलता है और विश्वास होता है कि भारत में दृढ़ राष्ट्रीय एकता के स्थापित होने आगामी वर्षों में संसार के मामलों में अधिक महत्त्वपूर्ण भाग लेगा।

अब तक भारत तथा अमेरिका के सम्बन्ध बड़े साधारण से थे। इसके कई कारण थे जिनमें प्रमुख स्थान भारत की राजनीतिक पराधीनता तथा भौगोलिक दूरी का था। भारत की अपेक्षा सुदूर पूर्व के प्रायः सभी देशों—चीन, जापान, इंडोनिशिया तथा फिलिपाइन आदि के अमेरिका के साथ व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध अधिक दृढ़ थे। इसी प्रकार भूतकाल में पश्चिम में ईरान, मिश्र, सीरिया तथा तुर्की के अमेरिका के साथ भारत की अपेक्षा अधिक दृढ़ सम्बन्ध थे।

इसके परिणामस्वरूप इस समय अमेरिका में ४-५ हज़ार से अधिक भारतीय नागरिक नहीं होंगे जिनमें से अधिकांश कैलिफोर्निया तथा प्रशान्त सागर के तटवर्ती प्रदेश में कृषि के व्यवसाय में लगे हुए हैं। कुछ भारतीय डेट्रायट तथा अतलान्तिक के अन्य औद्योगिक केन्द्रों में स्थित कारखानों में काम करते हैं। थोड़े से भारतीय व्यापार—अधिकतर निर्यात-आयात—भी करते हैं। गत कुछ वर्षों में प्रथम बार कई सौ भारतीय विद्यार्थी अमेरिका की शिक्षण संस्थाओं में विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करने भी भेजे गए हैं। इस प्रकार प्रारम्भ सुन्दर हुआ है और विश्वास है कि भविष्य में यह दोनों देश अधिक निकट आ जायँगे और एक दूसरे को पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा। व्यवसाय की नवीन कला, व्यापार, कृषि, आदि में भारत अमेरिका से बहुत कुछ सीख सकता है। भारत के पुनर्निर्माण तथा औद्योगीकरण में अमेरिका से वांछित सहायता तथा सहयोग की आशा करना भी अनुपयुक्त न होगा।

इन सब लक्षणों से यही प्रकट होता है कि दोनों देशों के व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध अधिक दृढ़ होंगे। अब से पहले जैसा कि मैंने कहा है अमेरिका में बहुत थोड़े भारतीय रहते थे और इसी कारण दोनों देशों के सम्बन्ध दूर के ही थे परन्तु इसपर भी दोनों में कई महत्त्वपूर्ण बातें समान थीं। उदाहरण के लिये अमेरिकन परम्परा से ही स्वतन्त्रता तथा जनतंत्र के प्रेमी रहे हैं और उन्होंने सदा ही भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है। साधारण जनता के अतिरिक्त समय-समय पर अमेरिका के प्रमुख नागरिकों ने भी भारत के अमेरिकन मित्रों के सहयोग से कुछ संस्थाएँ भी स्थापित कीं। यहाँ मैं केवल दो संस्थाओं का नाम लूँगा जिन्होंने इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया है और संकट के समय काफ़ी सहायता पहुँचाई। वाशिंगटन स्थित 'नेशनल कमेटी आफ इंडियन फ्रीडम' को अमेरिका के अधिकांश भारतीयों का समर्थन प्राप्त है। युद्ध की कठिन घड़ियों में अमेरिका की सरकार

तथा जनता के सामने भारतीय समस्या रखने में इसने सराहनीय कार्य किया। अमेरिका की इंडिया लीग के अधिकांश सदस्य अमेरिकन ही हैं और इसका प्रधान कार्यालय न्यूयार्क नगर में है। अमेरिकन दृष्टिकोण से भारत की स्वतंत्रता के महत्व के समझाने में इस समिति ने बहुत कार्य किया है। दोनों संस्थाएँ एक-दूसरे की प्रतिपोषक हैं और लक्ष्य एक होने के कारण दोनों सहयोग से कार्य करती हैं।

दूसरी ओर उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त भारत के सम्बन्ध में अमेरिकन जनता की अभिरुचि तथा ज्ञान बढ़ने का एक कारण यह भी था कि युद्ध काल में हज़ारों अमेरिकन भारत आए। यहाँ पर वे भारतीय जनता के निकट सम्पर्क में आए। यह बात तो सभी जानते हैं कि अमेरिकन अपने सार्वलौकिक व्यवहार तथा मृदुल स्वभाव के कारण भारतीय समाज में काफ़ी लोकप्रिय हो गए थे। यहाँ की जनता के सम्बन्ध में उनकी धारणा काफ़ी अच्छी है और यहाँ की समस्याओं का उन्हें अच्छा ज्ञान हो गया है। जैसे स्वातन्त्र्य-युद्ध में भारत की सहायता के उद्देश्य से कुछ अवकाश-प्राप्त अमेरिकन सैनिकों ने एक संस्था भी स्थापित की थी।

अमेरिकन और भारतीयों का यह अनुराग अन्योन्य था। इस विषय में एक बात उल्लेखनीय है। गत ३ वर्षों में अमेरिका के कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में इतने भारतीय छात्र गए हैं जितने शायद पिछले २० वर्षों में भी नहीं गए थे। इसका श्रेय वाटूमल फाउंडेशन (छात्रवृत्ति) को है जिसने सर्वप्रथम इस प्रशंसनीय कार्य का श्रीगणेश करके उदाहरण प्रस्तुत किया तथा जिसका भारतीय सरकार तथा अन्य संस्थाओं ने अनुकरण किया। परिणामस्वरूप इस समय अमेरिका की शिक्षण संस्थाओं में सैकड़ों भारतीय छात्र विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ये लोग अमेरिका तथा भारत के मध्य सद्भावना के वास्तविक तथा सबल राजदूत हैं।

अन्त में मैं इस बात का और उल्लेख कर दूँ कि हाल ही में भारतीय तथा चीनी प्रवासियों पर लगे प्रतिबन्ध को नियम द्वारा हटा देने से अमेरिका तथा समस्त पूर्व के सम्बन्धों में एक महान् राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आ गया है। पूर्व तथा पश्चिम का भेद और १९ वीं शताब्दि में पूर्व के देशों का यूरोपीय साम्राज्यवाद के पराधीन होना अब बड़ी शीघ्रता से भूतकाल की बातें बन रही हैं। एशिया का पुनरुद्धार अब एक ऐतिहासिक तथ्य है और हमें आशा करनी चाहिये कि भविष्य में श्रेष्ठ तथा सुखद संसार के निर्माण में भारत निश्चय ही प्रमुख भाग लेगा।

★ ★ ★

राजकुमारी अमृत कौर

केशव

भारत की प्रथम राष्ट्रीय सरकार के मंत्रिमंडल में राजकुमारी अमृत कौर की नियुक्ति से भारत ने विदुषी नारियों के सम्मान की अपनी प्राचीन परम्परा को बनाए रखा है। केन्द्रीय मंत्री-मंडल में आपकी नियुक्ति स्वास्थ्य-मंत्री के पद पर हुई जिसके लिए आप सब तरह से उपयुक्त हैं।

राजकुमारी अमृत कौर का सम्बन्ध कपूरथला राजवंश से है। आपके पिता स्वर्गीय राजा सर हरनाम सिंह वर्तमान कपूरथला नरेश के चाचा थे। राजा सर हरनाम सिंह एक प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। आप वर्षों गवर्नर-जनरल की समिति के सदस्य भी रहे। आपका वंश राजा की उपाधि से सुशोभित था। राजा हरनाम सिंह अपने उच्च विचारों तथा आदर्शों के लिए प्रसिद्ध थे और देश के सभी बड़े-बड़े नेताओं से उनकी मित्रता थी। इसी कारण राजकुमारी को भी अपने बाल्यकाल में देश की महान् विभूतियों के संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजा हरनाम सिंह द्वारा ईसाई धर्म अपना लेने पर आपका कपूरथला राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और कपूरथला दरबार ने आपको पैतृक 'पत्ति से वंचित कर दिया।

राजकुमारी अमृत कौर का जन्म सन् १८८७ में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा इंगलैंड में हुई। अपने शिक्षण काल में आपको खेलों से भी बड़ा प्रेम था और टेनिस आपका प्रिय खेल रहा है।

राजकुमारी अमृत कौर ने स्त्रियों के आन्दोलन में प्रारम्भ से ही प्रमुख भाग लिया और इस विषय में उनकी सेवाएँ किसी अन्य व्यक्ति से कम नहीं है। स्त्रियों के उद्धारकों में आपका नाम श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा डा० बेसेंट के साथ लिया जाता है। आप अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की जन्म-दात्रियों में से हैं और इसके संस्थापन काल से ही इसके प्रत्येक आन्दोलन में प्रमुख भाग लेती रही हैं। स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति को ऊँचा उठाने में सम्मेलन ने जो अकथनीय कार्य किया वह किसी से छिपा नहीं है। परिगणित जातियों की स्त्रियों के आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति में भी आपने काफ़ी भाग लिया है। आपका कहना है कि इन निरीह प्राणियों के प्रति किए गए दुर्व्यवहार भारत के मुख पर एक कलंक हैं जिसे शीघ्रातिशीघ्र ही धो देना उचित होगा।

स्वास्थ्य-मंत्री बनते ही राजकुमारी अमृतकौर ने अपने विभाग को पुनः व्यवस्थित किया और लेडी माउंटबैटन के साथ पंजाब के दंगा-ग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण किया। आपने विभिन्न शरणार्थियों से उनकी कठिनाइयों के सम्बन्ध में बात-चीत की और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न किए। दंगों के कारण स्वास्थ्य-विभाग की ज़िम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई थी। घायलों के लिए औषधियों तथा डाक्टरों की बहुत माँग थी। राजकुमारी अमृत कौर ने जिस लगन तथा दूरदर्शिता से स्थिति को सँभाला है उसे देख कर आश्चर्य ही होता है।



स्वास्थ्य विभाग की मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर

राजकुमारी अमृत कौर का गाँधी जी के जीवन सिद्धान्त 'सत्य तथा अहिंसा' में पूर्ण विश्वास है। आपकी अपनी एक विशिष्टता है जो आपके प्रत्येक वाक्य तथा शब्द से परिलक्षित होती है। आपकी दूरदर्शिता, कर्तव्यशीलता तथा प्रतिभा की लेडी माउंटबैटन ने बड़ी प्रशंसा की है। भारत को अपने राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए समाज-सेवा के कार्यों को उन्नत करना है जिसके बिना एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण असंभव है। हमें पूर्ण आशा है कि राजकुमारी इस कार्य को भली-भाँति पूरा करेंगी।

★ ★ ★ स्वास्थ्य ही सौन्दर्य है ★ ★ ★

सरला देवी

संसार की सुन्दरतम साड़ी भी अस्वस्थ शरीर पर आकर्षक नहीं लगती। वास्तव में आकर्षण का मुख्य कारण स्वास्थ्य ही है। प्रत्येक देश में स्वास्थ्य के बनाने के लिए अपने-अपने विशिष्ट उपाय हैं। यहाँ हम 'सूर्य-नमस्कार' की विधि बतायँगे। भारत में इसकी प्रथा हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। इससे आपका स्वास्थ्य सुधर जायगा और शरीर सुडौल बनेगा। इसे आरम्भ करने से पूर्व आप अपना वज़न करा लीजिए और थोड़े ही समय में ही आपको इसके लाभकारी होने का परिचय मिल जायगा।



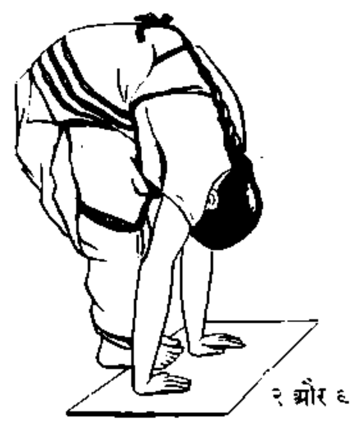
१

जैसा कि रेखाचित्रों से प्रकट है इस की दस स्थितियाँ हैं। ये स्थितियाँ निरन्तर चलती रहती हैं और दसवीं स्थिति पर पहुँचकर एक नमस्कार समाप्त हो जाता है। प्रत्येक नमस्कार में ३ बार साँस की साधारण क्रिया होती है। जिसमें ३ पूरक (श्वास भीतर खींचना) ३ कुंभक (श्वास को भीतर रोक रखना) तथा रेचक (श्वास को बाहर निकालना) सम्मिलित हैं।

आरम्भ करने से पूर्व इन रेखा चित्रों को अपने सामने रख लीजिए। इस व्यायाम को नित्य ही ५ अथवा १० मिनट तक करना चाहिए। प्रातःकाल का समय इस कार्य के लिए सर्वोत्तम है परन्तु यदि आपको प्रातःकाल अवकाश नहीं मिलता तो आप सायंकाल को कर सकती हैं। इससे आपको निद्रा अच्छी आयगी।

नमस्कार की विभिन्न अवस्थाओं में सुविधा के लिए भूमि पर एक तौलिया बिछाइए। सूर्य के सामने अथवा खुले में हाथ जोड़ कर इस प्रकार खड़ी हो जाइये कि आपके अँगूठे तौलिये को छूते रहें, हाथों को ज़ोर से दबाइये। छाती को ऊपर उठाकर पेट को बार-बार भीतर की ओर पीठ से लगाने का प्रयत्न कीजिये। सूर्य-नमस्कार में यह बड़ी महत्त्वपूर्ण क्रिया है। इससे पेट का आकार भी घटता है और पाचन-शक्ति तीव्र होती है।

बिलकुल सीधी खड़ी रहिये और पैरों से शरीर को अकड़ाना आरम्भ कीजिये। कमर पर विशेष रूप से ध्यान दीजिये अपने पैरों को भूमि पर ज़ोर से गड़ाइये। यदि आपका पेट फूला हुआ है तो आरम्भ में आपको कठिनाई होगी परन्तु धीरे-धीरे यह कठिनाई दूर हो जायगी। रीढ़ की हड्डी को बिना कँधे उठाए बिलकुल सीधा रखिये। यह पैरों से आरम्भ करनी चाहिए और धीरे-धीरे ऊपर के भाग को अकड़ाना चाहिए। इससे आपको



२ और ६

शरीर की समस्त मांसपेशियों का ज्ञान हो जायगा। इस क्रिया के मध्य में प्रसन्न चित्त रहिए और मुस्कराने का अभ्यास कीजिए। मन में शुभ संकल्प—मेरे ज्ञानतन्तु बलवान हो रहे हैं, मेरे नेत्र सबल हो रहे हैं, मैं सूर्य भगवान् से शक्ति ले रही हूँ—कीजिये।

दूसरी स्थिति

बिना घुटनों को मोड़े तौलिये पर अपनी हथेलियाँ टिकाइये। इस क्रिया के मध्य में भीतर की समस्त वायु को निकाल दीजिये। आरम्भ में आपको असुविधा होगी और हाथ तौलिये पर न टिकेंगे। ऐसी अवस्था में घुटनों को ज़रा मोड़ लीजिये परन्तु यथाशक्ति सीधा ही रखिये। कुछ दिनों के अभ्यास से यह कठिनाई दूर हो जायगी। हथेलियाँ टिकाते समय इनको पैरों के बिलकुल सामने टिकाइये। झुकते समय माथे अथवा नाक से घुटनों को छूने का प्रयत्न कीजिये और पेट को पीठ से लगाने का अभ्यास कीजिये। इससे भीतर की दूषित वायु पूर्णतः बाहर निकल जाती है। इस क्रिया में रीढ़ की हड्डी अच्छी तरह खिंच जाती है।

तीसरी स्थिति

आपकी हथेलियाँ तौलिए पर टिकी हुई हैं और यह दसवीं स्थिति तक यहीं रहेंगी। पूरी तरह से साँस खींच कर रोकिए। यह दूसरी साँस है। भुजाओं को बिना मोड़े दाँए घुटने पर बैठ जाइये और सिर को यथाशक्ति ऊँचा उठाने की चेष्टा कीजिये। बाएँ पंजे तथा घुटने से भूमि को छूने की चेष्टा कीजिए और जाँघ को दबाने की भरपूर कोशिश कीजिए। इसी प्रकार बाएँ घुटने पर बैठ कर इसी रीति से दोहराइये।



३ और ८

चौथी स्थिति

साँस को रोके रखिये और हथेलियां तथा भुजाओं को उसी अवस्था में रखिये। अब पैरों को जोड़ कर अपने शरीर को ऊपर की ओर उठाइये तथा पैरों को पीछे की ओर ले जाइये। आपका आकार अँग्रेज़ी अक्षर वी (V) के समान हो जाना चाहिये। आरम्भ में आपकी पिंडलियाँ फटने लगेंगी परन्तु धीरे-धीरे आप अभ्यस्त हो जायेंगी। मोटी पिंडलियों तथा जाँघों के लिए यह क्रिया बहुत लाभदायक होती है। इससे चर्बी छँट जाती है और स्फूर्ति आती है।

पांचवीं स्थिति

हथेलियों को भूमि पर टिकाए रखिये और भूमि पर उल्टी लेट

जाइये। माथे, नाक, छाती तथा पंजे से भूमि को छूने का प्रयास कीजिये परन्तु कमर, ठोढ़ी अथवा पेट को ऊँचा रखिये। ठोढ़ी को छाती से बार-बार लगाने का प्रयत्न कीजिये। ठोढ़ी लगाते समय साँस को बिलकुल निकाल दीजिये और बार-बार पेडू को पीठ से लगाइये और हटाइये।

पाँचवीं अवस्था का मुख्य उद्देश्य पेट तथा कमर को यथाशक्ति भूमि से ऊँचा उठाना है। इससे फालतू चर्बी छँट जाती हैं और शरीर में स्फूर्ति आती है। सिर के झुकाने से गले तथा गर्दन की मांसपेशियाँ सबल बनती हैं और त्वचा पर झुर्रियाँ नहीं पड़तीं। नाक को भी ऊपर ही रखना चाहिए, इससे गर्दन की मांसपेशियाँ अधिक सबल बन जाती हैं। इस अवस्था में घुटनों से ऊपर के शरीर का भार हथेलियों, कलाइयों तथा अग्रबाहु पर रहता है। इससे इन भागों के जोड़ों में लचक तथा शक्ति आती है।

छठी स्थिति

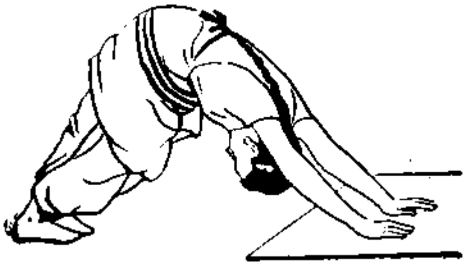
हाथ, पंजे तथा घुटने पाँचवीं स्थिति के समान ही रखिए। भुजाओं को सीधा करके साँस खींचिए और छाती को यथासम्भव फुलाइये। कमर पर बल देकर गर्दन को जितना भी हो सके पीछे की ओर ले जाकर छत को देखने का प्रयास कीजिये। साँस को रोके रखिए। इस क्रिया में शरीर का सारा भार भुजाओं पर पड़ता है। इससे धीरे-धीरे भुजाओं में शक्ति आती है और वे सुडौल बन जाती हैं। वक्षस्थल प्रशस्त तथा सुडौल बन जाता है।



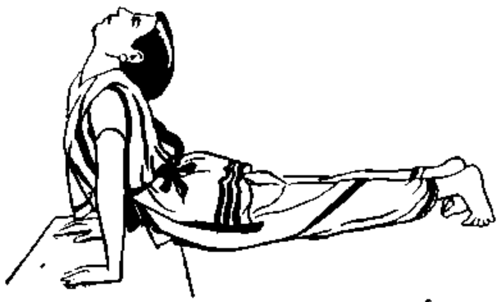
५

सातवीं स्थिति

आपने तीसरी साँस रोक रखी है। यह साँस इन दसों अवस्थाओं में सबसे लम्बी है और नौवीं स्थिति में निकाली जायगी। नवीं स्थिति से उठते समय आप एक साँस लीजिये जो दूसरे नमस्कार की प्रथम साँस होगी। सातवीं स्थिति से दसवीं स्थिति तक फिर इन्हीं उपर्युक्त अवस्थाओं को उलटे क्रम से कीजिये।



४ और ७



६

संतुलन के विचार से आठवीं स्थिति में थोड़ा परिवर्तन कर लीजिये। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक है दाएँ घुटने पर झुकने की बजाय बायें घुटने पर झुकिये परन्तु यदि आपको जिगर या तिल्ली का रोग है तो उसी प्रकार कीजिये। निम्नलिखित सारिणी से आपको सहायता मिलेगी।

(१) खड़े होकर (पूरक)
(२) झुके हुए (रेचक)
(३) दाहिना पैर पीछे (पूरक)
(४) वी (V) आकार (कुंभक)
(५) भूमि पर (रेचक)
(६) सिर उठाये हुए (पूरक)
(७) वी (V) आकार (कुंभक)
(८) बायाँ पैर पीछे (कुंभक)
(९) झुके हुए (रेचक)
(१०) खड़े होकर (पूरक)

एक 'सूर्य-नमस्कार' में १० स्थितियाँ होती हैं और अभ्यास करने से एक 'सूर्य-नमस्कार' में २० सेकेंड लगते हैं। आरम्भ में ५ मिनट में १५ नमस्कार करने चाहिएँ। ६ मास के भीतर ही आप १० मिनट में ४० नमस्कार करने लगेंगी।

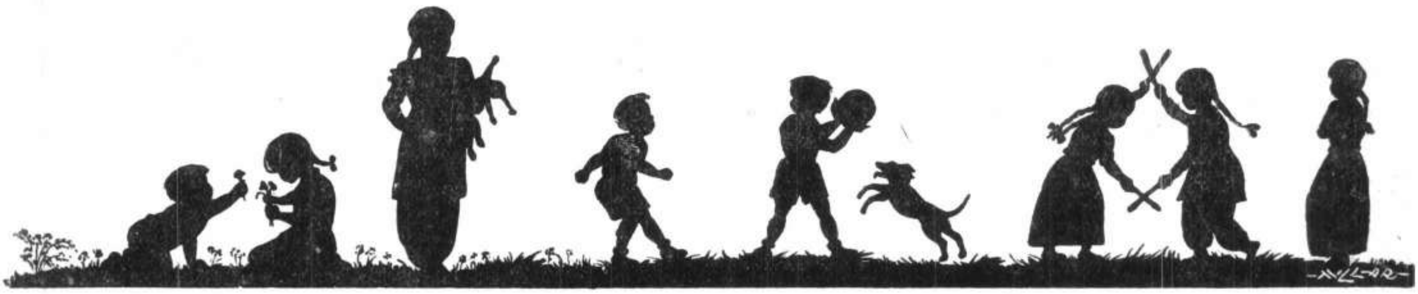
इस कार्य में जल्दी कभी नहीं करनी चाहिये आप नित्य नियमपूर्वक इस काम में एकनिष्ठ होकर १० मिनट लगाइये। यदि आपने इसका नियमपूर्वक पालन किया तो आप शीघ्र ही इसके चमत्कार का अनुभव करेंगी। आप विभिन्न अवस्थाओं का पृथक्-पृथक् भी अभ्यास कर सकती हैं और आप देखेंगी कि एक दिन आपको पूर्ण नमस्कार के करने में कोई असुविधा न होगी। इसके उपरान्त आपका शरीर सुडौल सुन्दर तथा तेजमय बन जायगा।



१०

★

बाल-मेला



सिंह और मच्छर

स्वर्गीय रामेश्वर 'करुण'

(१)

किसी सिंह के पास पहुँचकर
मच्छर बोला उससे एक—
तनिक नहीं मैं तुझसे डरता,
क्यों करता तू गर्व अनेक

(२)

है तू कुछ बलवान ? नहीं मैं
तनिक न इसका ख्याल करूँ ।
अच्छा उत्तर देना तो, मैं—
तुझ से एक सवाल करूँ ।

(३)

निज पंजों से तू खरोंचता,
कभी काटता दाँतों से ।
बच्चे भी क्या यही न करते,
लड़ पड़ते जब बातों से ?

(४)

फिर कहता हूँ सिंह, समझ ले
मैं तुझसे बलवान बड़ा ।
हो सन्देह तुझे तो लड़ ले,
आ जा मैं तैयार खड़ा ।

(५)

कहकर यों भिन्नाया, बैठा
ठीक नाक पर नाहर के ।
बिन बालों की चमड़ी पाकर—
डंक लगाये कस करके ।

(६)

झल्लाया झट सिंह, तड़ातड़
पंजा मुँह पर मार लिया ।
मच्छर का कुछ कर न सका
पर अपना वदन विदार लिया ।

(७)

विजय सिंह पर मैंने पायी,
फूला मच्छर कर अभिमान ।
भिन भिन करता उड़ा वहाँ से
विजय गीत का करता गान ।

(८)

गया न कुछ भी दूर कि तब तक
बंधा अचानक जाले में,
हँसता था जो विजयी बनकर
जकड़ा कष्ट कसाले में ।

(९)

मकड़ी ने जब उसे दबोचा
सोचा उसने अपने आप,
अपनी करनी से ही पाया
मैंने इतना दुख संताप ।

(१०)

गर्व न करता यदि नाहर से
क्यों जाले में फंसता मैं,
अपने को बलवान बताकर
यदि यों व्यर्थ न हँसता मैं ।

टेलीविज़न

हरीश

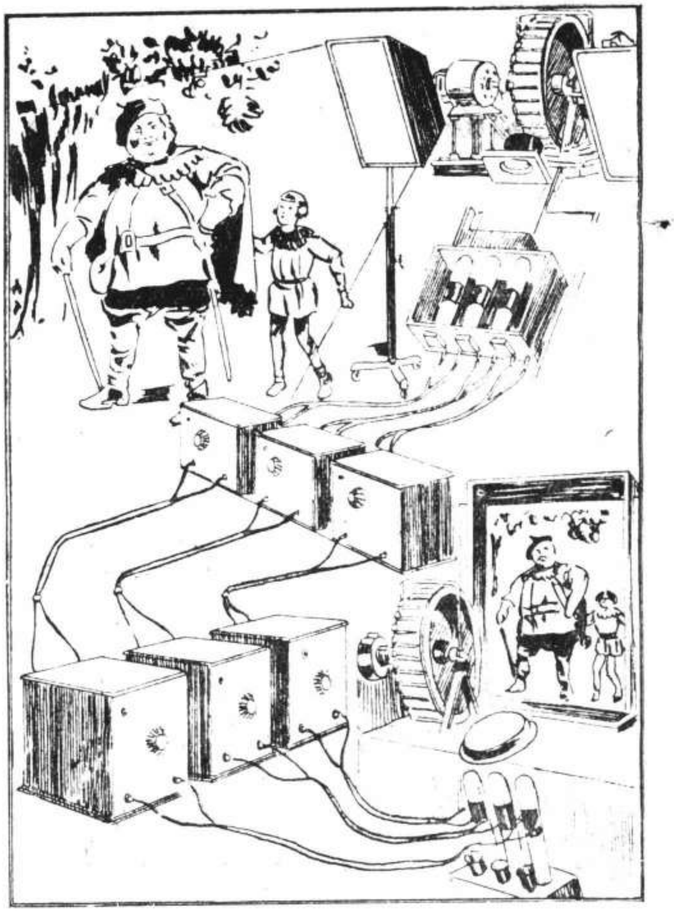
बच्चो ! तुम रेडियो सुनते हो, कभी-कभी टेलीफोन पर भी बात करते हो परन्तु आवाज़ सुनते हुए कभी तुम्हारे मन में दूसरी ओर से बोलने वाले को देखने की भी लालसा हुई ? मुझे विश्वास है कि तुम्हारे मन में ऐसा विचार अवश्य आया होगा। देखो ! तुम योग्य बच्चे हो और जानते हो कि आजकल के इस वैज्ञानिक युग में कोई भी वस्तु असम्भव नहीं है केवल धैर्य और लगातार प्रयास की आवश्यकता है। तुम को यह जान कर आश्चर्य नहीं होगा कि अब दूर बैठे हुए भी घटनाओं के दृश्य उसी समय देखे जा सकते हैं।

इस यंत्र को टेलीविज़न कहते हैं जिसका अर्थ है दूर की वस्तु देखना, (टेली=दूरस्थ, विज़न=देखना)।

यद्यपि इस आविष्कार के आधारभूत सिद्धान्त का पता ५० वर्ष पहले ही लग गया था परन्तु इसके बनने में काफ़ी देर लगी। इसके बनाने वाले वैज्ञानिक का नाम श्री जानलॉगी बेअर्ड है। उनकी हाल ही में मृत्यु हुई है। बेअर्ड ऐक ग़रीब और गिरे हुए स्वास्थ्य का मनुष्य था परन्तु अपने धैर्य, दृढ़ता तथा लगातार प्रयास के बल से विश्व-विख्यात बन गया। वह इतना गरीब था कि वैज्ञानिक यंत्र आदि भी नहीं खरीद सकता था। परन्तु बच्चो ! तुम जानते हो जहाँ चाह है वहाँ राह है। उसने अपने घर की टूटी-फूटी वस्तुओं से ही टेलीविज़न के यंत्र आदि का काम निकाला। उसके घर में केवल दो कमरे थे। एक में उसने समाचार भेजने वाला 'प्रेषकयंत्र' लगाया और एक में समाचार लेने वाला 'रिसीवर'। साधारण यंत्रों से सुसज्जित इस छोटी सी प्रयोगशाला में टेलीविज़न का जन्म हुआ। एक दिन बेअर्ड ने एक दूसरे कमरे से प्रेषित एक लड़के का चित्र दूसरे कमरे में देख ही लिया।

सन् १९२७ में उसने लन्दन के दृश्यों को ग्लासगो भेजने का सफल प्रयास किया। इस से प्रोत्साहित हो कर उसने ब्रिटेन के महान् वैज्ञानिकों की समिति 'ब्रिटिश एसोसियेशन' के सामने अपने टेलीविज़न का प्रदर्शन किया। एक वर्ष बाद उसने अतलान्तिक महासागर के पार तक चित्र भेजा। इस चमत्कार को देख कर सारा संसार हैरान रह गया और यूरोप तथा अमेरिका के विभिन्न देशों में खोज का कार्य आरम्भ किया गया। परन्तु सब से पहले ब्रिटेन में ही सन् १९२९ में लन्दन के अलेग्ज़ेंड्रिया पेलेस में ब्राडकास्टिंग गृह की स्थापना हुई। यहाँ टेलीविज़न का एरियल २२० फुट ऊंचे खम्बे पर लगा हुआ है।

अब तुम देखोगे कि इस आविष्कार का आधारभूत सिद्धान्त कितना सरल है। किसी वस्तु की ओर देख कर आँखें मूँद लो। तुम देखोगे आँखें बन्द कर लेने पर भी घड़ी से भी कम अवधि तक वह वस्तु



दिखाई देती रहती है। टेलीविज़न में इस साधारण से तथ्य का ही उपयोग किया गया है। प्रेषण-गृह में जिस वस्तु को प्रेषित करना होता है एक बिजली की आँख द्वारा बार-बार देखा जाता है। यह काम इतनी जल्दी किया जाता है कि एक पल में ही सारे दृश्य को कई बार देख लिया जाता है। इस 'बिजली की आँख' से एक बिजली की लहर उत्पन्न होती है जिसे दूसरे स्थान पर भेजा जाता है। वहाँ यंत्रों की सहायता से किसी पर्दे पर बिजली की रोशनी डाल कर दृश्य दिखाया जाता है। इस प्रकार वस्तु का चित्र बार-बार भेजा तथा प्राप्त किया जाता है परन्तु यह कार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि एक चित्र के अदृश्य होने से पूर्व ही दूसरा चित्र सामने आ जाता है और दर्शक को दृश्य निरन्तर दिखाई देता रहता है।

प्रारम्भ में ध्वनि तथा दृश्य के लिए अलग-अलग दो लाइनों का प्रयोग होता था परन्तु अब वायरलैस टेलीविज़न का प्रयोग सफल हो गया है।

युद्ध से पहले जर्मनी में २४–१८ इंच तक का चित्र दिखाई देता था। अभी तक केवल १०० मील की दूरी तक ही साफ़ साफ़ चित्र दिखाया जा सकता है। इस समय टेलीविज़न के 'रिसीवर ५०० रुपये से २,००० रुपये तक में उपलब्ध हैं।

(शेष पृष्ट ५० पर)

भारतीय स्वतन्त्रता के प्रतीक : डाक के नये टिकट

विश्व

सतीश को डाक के टिकट संग्रह करने का बड़ा शौक़ है । उसके पास एक बड़ी सुन्दर सजिल्द एलबम है । उसमें विभिन्न देशों के नये पुराने अनेकानेक टिकट कलात्मक ढंग से चिपके हुए हैं। इन टिकटों का संग्रह करने में उसने बड़ा श्रम और धन लगाया है । समुद्र पार के अनेक देशों में केवल पत्रव्यवहार के द्वारा उसने कई मित्र बना लिए हैं । इन मित्रों को वह अपने देश के टिकट, ऐतिहासिक स्थानों के चित्र तथा अन्य ऐसी ही वस्तुएं भेजता रहता है । उसके मित्र भी परिवर्तन में अनेकानेक वस्तुएं उसके पास भेजते हैं ।

जब सतीश ने समाचार पत्र में पढ़ा कि भारत द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपलक्ष्य में डाक के नए टिकट जारी किये जायेंगे तो उनको शीघ्र प्राप्त करने के लिए वह उतावला हो उठा । भागा-भागा पास के डाकख़ाने में गया किन्तु वहाँ उसे पता लगा कि नये टिकट कुछ दिनों बाद आयेंगे । यह जान कर उसे कुछ दुःख हुआ किन्तु वह निराश नहीं हुआ । यकायक उसे ध्यान आया कि टिकट संग्रह करने वालों के लिए तो बम्बई के बड़े डाकखाने ने एक ब्यूरो खोल रखा है । उसने तुरन्त ब्यूरो को लिखा कि नये टिकट शीघ्र ही उसके पास भेजें। एक सप्ताह के बाद जब डाकिये ने आकर उसे नये टिकटों का पैकेट दिया तो वह हर्ष से नाच उठा। प्रतीक्षा का यह एक सप्ताह उसने एक वर्ष के समान काटा । अब पैकेट हाथ में आते ही उसे खोलकर नये टिकट देखने की उसकी उत्सुकता इतनी बढ़ गई कि उसके हाथ कांपने लगे । तीन प्रकार के नये टिकटों को देखकर तो उसके हर्ष की कोई सीमा नहीं रही। उनकी मनोहर आकृति और सुन्दर रंग उसे बड़े अच्छे लगे ।

झट से वह अपनी एलबम लाया और उसके प्रथम पृष्ठ पर उसने तीनों प्रकार के टिकटों को सुन्दर ढंग से चिपका दिया । फिर वह तुरन्त अपने विदेशी मित्रों को पत्र लिखने बैठ गया जिनको वह अपने स्वतन्त्र देश के टिकट भेजने का लोभ संवरण न कर सका ।

उसने पत्र लिखा—

प्रिय मित्र,

जय हिन्द ! आज मैं तुम्हारे पास एक ऐसी वस्तु भेज रहा हूँ जिसे पाकर तुम बहुत प्रसन्न होगे । वह वस्तु है हमारे स्वतन्त्र देश के नये डाक टिकट । यह तो तुम जानते हो कि १५ अगस्त को हमारा देश पूर्ण स्वतन्त्र हो गया । इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के उपलक्ष्य में ही ये तीन नये टिकट चालू किये गये हैं !



डेढ़ आने वाला टिकट हरे रंग का है और उसके ऊपर सिंह सहित अशोक स्तम्भ और अशोक चक्र को चिन्ह अंकित है । यह हमारे प्राचीन इतिहास के स्वर्णकाल का गौरवमय प्रतीक है । सबसे ऊपर हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी में राष्ट्रीय जयघोष "जय हिन्द" और उसके बिल्कुल नीचे भारतीय स्वातन्त्र्य तिथि १५ अगस्त १९४७ अंकित है । यह टिकट आन्तरिक डाक के लिए है ।



साढ़े तीन आने वाला टिकट वह है जिस पर हमारे स्वतन्त्र देश का तिरंगा झंडा नीलाकाश में लहरा रहा है । केसरिया, सफ़ेद और हरे रंगों का प्यारा झंडा हमारे स्वातन्त्र्य युद्ध का अमर चिन्ह है । बीच में अंकित अशोक-चक्र इसका सम्बन्ध हमारे प्राचीन इतिहास से जोड़ देता है । 'जय हिन्द' और '१५ अगस्त १९४७' इस टिकट पर भी अंकित हैं। यह टिकट अन्तर्राष्ट्रीय डाक के लिये है और जहाँ कहीं भी यह जायगा वहाँ के निवासियों को यह सूचना देगा कि स्वतन्त्र देशों के नभोमण्डल में एक नये स्वतन्त्र राष्ट्र का उदय हुआ है ।

तीसरा टिकट जिस पर नीलाकाश की पृष्ठभूमि पर वायुयान अंकित है हवाई डाक के लिये है तथा इसका मूल्य बारह आने है । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत के बढ़ते हुए महत्व का यह सुन्दर प्रतीक है ।



मुझे विश्वास है कि ये टिकट तुमको सुन्दर लगेंगे । मुझको कितने सुन्दर लगे यह तो मैं क्या कहूँ ? हो सकता है कि भावुकतावश मैं अपने देश की नवप्राप्त स्वतन्त्रता के इन प्रतीकों के प्रति अधिक आकर्षित होऊं । किन्तु फिर भी, मुझे लगता है कि कला की दृष्टि से भी ये कम सुन्दर नहीं ।

एक बात और, ये टिकट भारत द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपलक्ष्य में चालू किये गये हैं और केवल ३० अप्रैल १९४८ तक बिकेंगे । लेकिन स्वतन्त्र भारत के विभिन्न प्रकार के टिकटों के लिए जो बाद में स्थायी रूप से चालू होंगे हमारी राष्ट्रीय सरकार एक प्रतियोगिता कर रही है । टिकटों के लिए सुन्दर डिज़ाइन बनाने वाले कलाकारों के लिए कई हज़ार रूपये के पुरस्कार की घोषणा की गई है। आशा है कि वे टिकट इन टिकटों से भी अधिक सुन्दर होंगे । विश्वास रखो कि उनके चालू होते ही मैं तुम्हारी एलबम के लिए उन टिकटों को अवश्य भेजूंगा ।

तुम्हारा अभिन्न
सतीश

★ ★

क्या तुम जानते हो ?

आंसू नमक से बनते हैं

हमारे शरीर के लिए नमक बहुत आवश्यक है क्योंकि नमक का पानी ही वास्तव में वह प्राकृतिक जल है जिसमें हमारे शरीर का प्रत्येक भाग ठीक रह सकता है। जब हम खाने के साथ नमक खाते हैं तो वह हमारे शरीर में जाकर हल हो जाता है। और यह तो तुम जानते ही हो कि इसमें दो तिहाई पानी होता है। आँसुओं का काम यह है कि वे हमारी आँखों को धोकर साफ़ करें। यदि तुमने कभी आँसुओं को ज़बान से लगाया हो तो देखा होगा कि वे नमकीन होते हैं। यह विचित्र बात है कि आँख जैसी कोमल वस्तु के लिये शुद्ध पानी हानिप्रद सिद्ध हुआ है। आँख को सही हालत में रखने के लिये नमकीन पानी ही ज़रूरी है।

एक मील गहरी घाटी

अमरीका के पश्चिमी भाग में मिया नामक एक बड़ा ज़िला है जो निर्जन वनों से पटा पड़ा है। यहाँ के दृश्य संसार के सबसे अद्‌भुत दृश्यों में से हैं। कई स्थानों में यह समुद्रतल से ७००० फुट से लेकर १०,००० फुट तक ऊँचा है और कहीं-कहीं इसमें ४,००० फुट से लेकर ७,००० फुट तक गहरी खाइयाँ हैं। इसी जिले में एक घाटी है जो दो सौ मील लम्बी है। कई स्थानों पर यह चौदह मील चौड़ी और एक मील से अधिक गहरी है। इसकी तह में एक विशाल नद लहरा रहा है।

तारे झिलमिलाते नहीं

जब हम तारों को देखते हैं, तो वे हमें झिलमिलाते हुए नज़र आते हैं। परन्तु वास्तव में उनकी ज्योति स्थिर है। और उससे सब ओर एक समान किरणें फैलती हैं। वे इसलिये झिल-मिलाते नज़र आते हैं कि पृथ्वी के वायुमण्डल में पहुँचने से पहले ज्योति की लहरें आपस में टकरा जाती हैं। इस वजह से कुछ किरणें दूसरी किरनों की अपेक्षा देर से हम तक पहुँचती हैं और जो ज्योति हमारी आँखों तक पहुँचती है, वह झिलमिलाती हुई मालूम होती है।

कोयला दबी हुई धूप है

कोयले को कभी-कभी दबी हुई धूप कहा जाता है, यह सही है। युग बीते, जब इस धरती पर मनुष्य का नाम निशान नहीं था तो जंगलों में विशालकाय वृक्षों की भरमार थी। सूरज उनपर चमकता रहता था। सहस्रों वर्ष तक वे धूप का पान करते रहे। फिर ये वृक्ष गिर गये और उनकी मुरझाई हुई पत्तियाँ और शाखाएँ भूमि में दब गयीं। भूगर्भ में इनमें परिवर्तन होने लगा। और बहुत समय पश्चात् ये कठोर और काली पड़ गयीं। समय बीत गया और मनुष्य ने ज़मीन खोद कर इस पदार्थ का पता लगा लिया और इसका नाम कोयला रख दिया।

× ×

अगस्त मास की चित्र-प्रतियोगिता के पुरस्कार विजेताः—

प्रथम विजेता	...	श्री विजयकृष्ण, रायबरेली
द्वितीय विजेता	...	श्री पी.के. बाजपेयी, खंडवा
तृतीय विजेता	...	सुद्दोनारायण प्रधान, दार्जिलिंग

नोट— प्रथम विजेता को ५) रु० की, द्वितीय विजेता को ३) रु० की और तृतीय विजेता को २) रु० की पुस्तकें भेजी जा रही हैं।

सम्पादक

(पृष्ठ ४८ का शेषांश)

युद्ध के दिनों में बड़े पैमाने पर खोज का कार्य न हो सका परन्तु श्री बेयर्ड ने अपना प्रयास जारी रखा और घोर अन्धकार में भी चित्र भेजने में सफलता प्राप्त की। सेना के लिए इसका बड़ा महत्व है। उसने दृश्यों को उनके प्राकृतिक रंगों में भेजने की विधि भी ढूँढ निकाली।

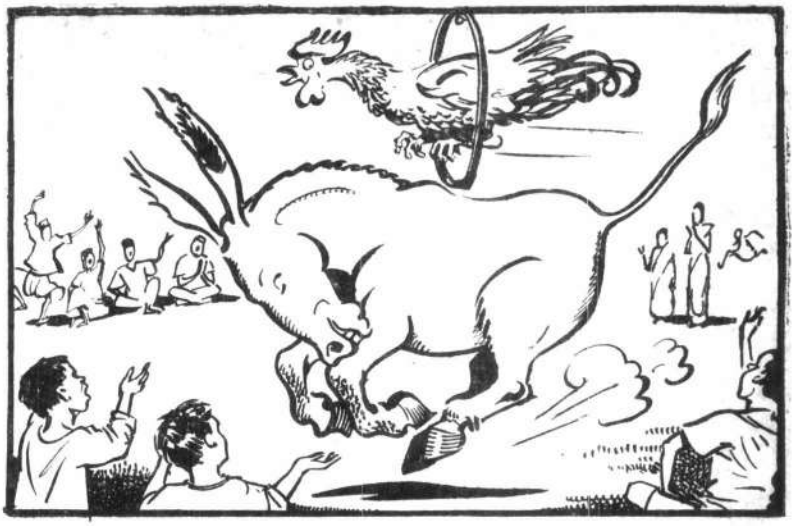
अब युद्ध समाप्त हो जाने पर टेलीविज़न की फिर चर्चा सुनाई देती है। यद्यपि भारत में यह निकट भविष्य में ही तो उपलब्ध नहीं होगा··परन्तु इसके लिए अधिक दिन बाट भी नहीं जोहनी पड़ेगी। अभी कुछ दिन हुए इंगलैंड की राजकुमारी एलिज़बेथ के विवाह के उत्सव को इंगलैंड में टेलीविज़न द्वारा दूर-दूर तक दिखाया गया था।

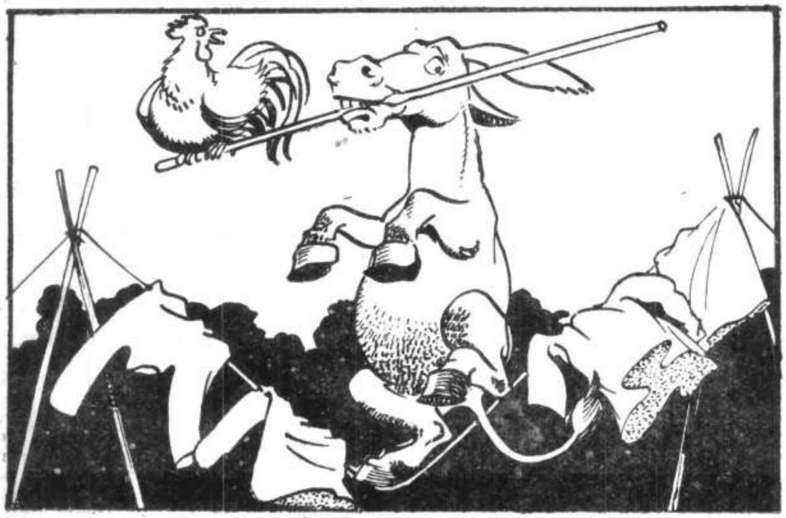
ज़रा अब तुम विचार करो कि घर बैठे दूसरे नगर का क्रिकेट मैच देखने में कितना मज़ा आयगा अथवा भीड़ में बिना धक्के खाए भाषण सुनना कितना मनोरंजक होगा। शीघ्र ही हम घर बैठे-बैठे बहुत से प्रमुख समारोहों में भाग ले सकेंगे और वहाँ के दृश्य देख सकेंगे। भीड़ में उचक-उचक कर देखने की अपेक्षा यह कहीं अधिक सुविधाजनक होगा।

वैशाखनन्दन

(३)

वैशाखनन्दन को अपने भूरे रंग की वेषभूषा सुन्दर आँखों और ऊँचे स्वर पर बड़ा अभिमान है। उनका हृदय बड़ा कोमल है और जहाँ तहाँ वे अपनी प्रशंसा स्वयं करते रहते हैं। इन बातों के होते हुए भी उनमें एक बहुत बड़ा दोष है। उन्हें जो कुछ करना होता है उसे पहले कर उड़ाते हैं और फिर उसके परिणाम पर विचार करते हैं। आप सभी जानते हैं कि मूर्खता की यह पहली निशानी है।





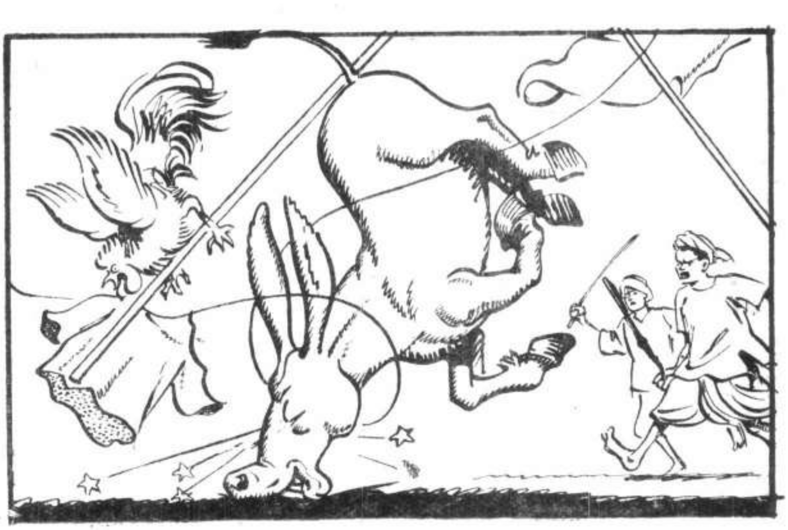
बाँसों से बँधी हुई धोबी की अलगनी पर पड़ी। अलगनी पर दूध जैसी सफेद चादरें सूख रही थीं। वैशाखनन्दन का दिल चाहा कि तनी हुई रस्सी पर नाचने वाले की नकल की जाय। उनका विचार था कि इस काम से लोग और भी प्रसन्न होंगे।

परन्तु खेद! हमारे वैशाखनन्दन ज़रा मोटे हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें सरकस के नटों जैसी शिक्षा भी तो नहीं मिली। नतीजा यह हुआ कि वैशाखनन्दन की खूब पिटाई हुई और दिन भर उन्हें खाने को भी कुछ न मिला। उन्हें उपवास करना पड़ा। मुर्ग़ा मियाँ भी बंद कर दिये गये और बहुत उदास होकर बैठ गये।

वैशाखनन्दन और उनके मित्र मुर्ग़ा मियाँ सरकस देखने गये और उन्होंने यह निश्चय किया कि खुद तमाशा दिखा कर अपने मित्रों को भी प्रसन्न किया जाय।

इनके कुछ एक कामों की बड़ी प्रशंसा हुई। मुर्ग़ा मियाँ ने उस औरत की बहुत तारीफ़ की जो एक गधे पर कभी उचक कर बैठ जाती थी और कभी कूद पड़ती थी और कभी गधे की नंगी पीठ पर सवार होकर आग के घेरे फलाँग जाती थी। वास्तव में वह गधे वैशाखनन्दन ही थे।

तमाशा सफल रहा। वैशाखनन्दन और उनके मित्र फूले न समाते थे। एकाएक वैशाखनन्दन की दृष्टि मैदान में दो



हमारा पुस्तकालय



कुब्जा सुन्दरी (कहानी संग्रह)—मूल लेखक—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य; अनुवादिका—श्री शान्ति भटनागर एम० ए०; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; मूल्य २); पृष्ठ संख्या १६७।

श्री राजगोपालाचार्य एक महान् राजनीतिक नेता और सफल शासक ही नहीं वरन् एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक भी हैं। आपने अधिकांश साहित्य रचना अपनी मातृभाषा तमिल में की है किन्तु उसके अनुवाद अंग्रेज़ी, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी होते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहीत कहानियाँ भी मूलतः तमिल में लिखी गई थीं। हिन्दी अनुवाद सीधे तमिल से नहीं वरन् अंग्रेज़ी अनुवाद से हुआ है। यह हमारे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय साहित्य को भी हम तक पहुँचने के लिए विदेशी भाषा का सहारा लेना पड़ता है। वर्तमान समय की आवश्यकता है कि हिन्दी में जो भी अनुवाद हों—न केवल भारतीय साहित्य के वरन् विदेशी साहित्य के भी—सीधे उस साहित्य की भाषा से हिन्दी में हों। आशा है कि हिन्दी के साहित्यिक इस ओर ध्यान देंगे और प्रकाशक भी इस कार्य में उनको प्रोत्साहन देकर अपने कर्तव्य की पूर्ति करेंगे।

राजा जी की कहानियाँ केवल कहानियाँ नहीं। एक ओर वे हमारी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण उपस्थित करती हैं तो दूसरी ओर पाठकों में समाज सुधार, देश सेवा तथा नवनिर्माण की भावनाएँ भरती हैं। कहानियों के कथानक की पृष्ठभूमि दक्षिणी भारत का हिन्दू समाज है। अतः इन कहानियों को पढ़कर हमें दक्षिण निवासियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, गुण-दोष एवं उनकी समस्याओं का परिचय मिलता है। इन कहानियों को पढ़कर हमें यह भी अनुभव होता है कि हमारी सब की मूल समस्याएँ समान हैं तथा सब के हृदय में प्रेम, घृणा, सहानुभूति, अभिमान और त्याग आदि की भावनाएँ एक प्रकार ही उठती हैं।

राजा जी की कहानियों में किसान, मज़दूर, मध्यम वर्ग एवं उच्च वर्ग सभी के जीवन का चित्रण है। दलित मानवता के प्रति उनकी मानवीय सहानुभूति स्पष्टतः लक्षित होती है। 'मनहूस गाड़ी', 'पुनर्जन्म' 'शान्ति' एवं 'अर्द्धनारी' आदि कहानियाँ पढ़ते हुए प्रेमचन्द जी की कहानियों की याद आ जाती है।

चरित्र चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में उनकी कला खूब मंजी हुई है। लेखन शैली सरस, सजीव तथा अवसर के अनुकूल तीखी और व्यङ्गपूर्ण है। इस संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ उच्चकोटि की हैं एवं कला की अनुपम कृतियाँ हैं। हाँ 'भविष्य वाणी' कहानी बड़ी हल्की लगती है जिसमें न तो कुछ कथानक का विकास हो पाया है और न चरित्र चित्रण भी। केवल ज्योतिष शास्त्र की सत्यता दिखाना ही कहानी का उद्देश्य लगता है।

पुस्तक की छपाई और गेट अप सुन्दर है। हिन्दी प्रेमियों के लिए राजा जी की कहानियों को सुलभ करने के लिए प्रकाशक अवश्य ही बधाई के पात्र हैं। आशा है हिन्दी संसार इस पुस्तक को अपनाएगा।

—विश्व

●

रहमान का बेटा—लेखक—श्री विष्णु प्रभाकर; प्रकाशक—नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर; पृष्ठ संख्या २०१; मूल्य २॥)।

प्रस्तुत पुस्तक श्री विष्णु की चुनी हुई १६ राजनीतिक कहानियों का संग्रह है। कहानियों की पृष्ठभूमि का आधार भारतीय राजनीतिक उथल-पुथल है। आतंकवाद से लेकर सत्याग्रह, गोली-काण्ड, विश्व युद्ध, अकाल, हिन्दू मुस्लिम दंगे तथा अन्तरिम सरकार की स्थापना तक जो जो घटनाएँ हमारे देश में घटीं और उनका जो प्रभाव जन-जीवन पर पड़ा कहानियों के रूप में उनकी झाँकी देने का यह सफल प्रयास है। ये कहानियाँ एक दर्पण की तरह इस संक्रान्ति काल का प्रतिबिम्ब ही उपस्थित नहीं करतीं वरन् एकता, स्नेह और सहानुभूति का संदेश भी देती हैं। इन कहानियों की एक विशेषता यह है कि ये केवल प्रोपेगेण्डा की वस्तु नहीं हैं। प्रायः सभी कहानियाँ जहाँ अपने संदेश की दृष्टि से सामाजिक महत्त्व की हैं वहाँ कला की दृष्टि से भी उच्चकोटि की हैं।

चरित्र चित्रण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कथोपकथन सभी दृष्टि से इस पुस्तक की कहानियाँ सुन्दर बन पड़ी हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन कहानियों द्वारा लेखक ने सफल और स्वस्थ साहित्य समाज को देने की चेष्टा की है तथा इस प्रकार उसके नवनिर्माण में योग देने का सुन्दर प्रयत्न किया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी संसार द्वारा इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत होगा और आशा है कि लेखक भविष्य में भी समाज को स्वस्थ साहित्य देता रहेगा।

—विश्व

●

झरोखे—लेखक, सुदर्शन; प्रकाशक—हिन्द किताब्स, लिमिटेड, २६१-२६३, हार्नबी रोड, बम्बई, मूल्य १॥)

श्री सुदर्शन हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी कहानियों एवं नाटकों ने हिन्दी संसार का पर्याप्त मनोरंजन किया है। आलोच्य पुस्तक में सुदर्शन जी ने एक नये ही मार्ग का अनुसरण किया है। झरोखे में जीवन और जगत की ३७ झाँकियाँ हैं। प्रत्येक झाँकी कहानी की कहानी और संकेत का संकेत है। इसमें लेखक के कहानीकार एवं विचारक दोनों रूपों का एक साथ सुन्दर समन्वय मिलता है। मन और मस्तिष्क दोनों की प्यास को शान्त करने की सामग्री झरोखे में आप देख सकेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सुदर्शनजी का यह रूप बड़ा सरल एवं मनोहर है।

●

भाषा-विज्ञान-सार—लेखक राममूर्त्ति मेहरोत्रा एम० ए०। प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। पृष्ठ संख्या २५१, मूल्य २)।

भाषा-विज्ञान पर हिन्दी में साहित्य की बहुत कमी है। इस विषय पर अच्छी पुस्तकों का बहुत ही टोटा है। अब जबकि हिन्दी राष्ट्र भाषा के गौरवपूर्ण पद पर आसीन हो चुकी है, और विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में हिन्दी प्रवेश कर चुकी है, इस बात की परम आवश्यकता है कि हिन्दी में प्रत्येक विषय पर अच्छी-अच्छी एवं परीक्षोपयोगी पुस्तकों का प्रणयन किया जाय। मेहरोत्रा जी ने भाषा-विज्ञान-सार लिख कर हिन्दी साहित्य की एक कमी को पूरा करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। प्रस्तुत पुस्तक में भाषा विज्ञान, और उसके महत्त्व, भाषा के विकास, भाषाओं के वर्गीकरण, उनकी परिवर्तनशीलता उनके रूप विचार एवं अर्थ विकार तथा उसके कारण पर भी बड़े रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत पुस्तक में व्यवहृत अँगरेजी के पारिभाषिक शब्दों की उनके हिन्दी पर्याय वाची शब्दों सहित एक तालिका भी दी गयी है जिससे अंगरेज़ी जानने वाले विद्यार्थी के लिये हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के समझने में सुगमता होगी। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि लेखक ने पुस्तक को परीक्षोपयोगी बनाने में काफी मेहनत की है। परन्तु एक बात की ओर हम लेखक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहते हैं। तीसरे अध्याय में लेखक ने भारतवर्ष की आधुनिक प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुए पंजाबी के विषय में लिखा है कि पंजाबी में साहित्य नाम मात्र को ही है। यह बड़ी भ्रान्त धारणा है। पंजाबी में साहित्य का, अच्छे साहित्य का अभाव नहीं। यह बात और है कि उसकी सीधी जानकारी लेखक को न हो। 'जन्म साखी' को ग्राम्य गीत बताना भी लेखक के विषय में यही सिद्ध करता है।

जन्म साखी पंजाबी भाषा की सर्वप्रथम गद्य-पुस्तक है। इसी प्रकार गुरुमुखी भी लँहदा की लंडा लिपि का एक परिवर्तित रूप नहीं, वह देव नागरी का ही परिवर्तित रूप है जिसे सिखों के दूसरे गुरु श्री अंगददेवजी ने प्रचलित किया। गुजराती भाषा के साहित्य के विषय में भी लेखक मौन है। मानों गुजराती में भी अच्छे और उच्चकोटि के साहित्य का सर्वथा अभाव है। केवल उसकी तीन बोलियों का उल्लेख किया है जैसे गुजराती साहित्यिक भाषा ही नहीं। अतीत के विषय में तो सदा मतभेद रहता ही आया है। उसके अमुकरूप के सत्यासत्य के सम्बन्ध में बिना प्रमाण और ठोस आधार के तो कोई निश्चित मत स्थिर किया ही नहीं जा सकता, परन्तु वर्तमान के विषय में लेखक को बहुत ही सावधानी से कलम उठानी चाहिये। आशा करनी चाहिये कि भाषा-विज्ञान-सार के लेखक इन पंक्तियों पर ध्यान देकर अगले संस्करण में उचित संशोधन करके अपने पाठकों को सही-सही जानकारी देने का प्रयत्न करेंगे।

—कैलास

●

अदिति—श्री अरविन्द जयन्ती अंक—अगस्त १९४७—वार्षिक शुल्क २) श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी, दक्षिण भारत।

'अदिति' भारत के त्रैमासिक साहित्य में विशेष स्थान रखती है। उसका उद्देश्य कल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और आज के तपस्वी अरविन्द के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करना है परन्तु उसकी सामग्री से स्पष्ट है उसमें 'वाद' का आग्रह नहीं है। यह शुभ लक्षण है। आज के युग में जिस वैज्ञानिक विचारधारा की पुकार है उसी के आधार पर वह अपने मन्तव्यों को जनता तक पहुँचाना चाहती है। मतभेद दूसरी बात है परन्तु उसकी मूल भावना समन्वयात्मक है। श्री अरविन्द के शब्दों में "प्राच्य और पाश्चात्य का एकीकरण इस युग का धर्म है।" परन्तु इस एकीकरण का आधार वे प्राच्य ही मानते हैं—"प्राच्य ही आधार है प्राच्य ही मुख्य अंग है......पाश्चात्य लोग प्रजातन्त्र के बाहरी आकार और उपकरण में फंस गये हैं...वे आकार और उपकरण में इस प्रकार आसक्त हो गये हैं कि वे इस बात को देख ही नहीं पाते कि उस बाहरी आकार के अन्दर श्रद्धा मर रही है।"

प्रस्तुत अंक में जो लेख हैं वे विशेष रूप से उनके जीवन और दर्शन से सम्बन्ध रखते हैं। वे सब गम्भीर, गवेषणात्मक, मनन करने योग्य और स्थायी साहित्य की वस्तु हैं। डा० इन्द्रसेन का लेख विशेष रूप से श्री अरविन्द तथा उनके सन्देश को समझने की सामग्री प्रस्तुत करता है। श्री सुमित्रानन्दन की कविता कवि के अनुरूप है।

पत्रिका 'प्राच्य और पाश्चात्य' के गम्भीर पाठकों के लिये अनिवार्य सामग्री प्रस्तुत ही नहीं करती उनका मार्ग प्रदर्शन भी करती है। इसके साथ-साथ जिज्ञासु के लिये समाधान भी इसमें है।

जहाँ तक सम्पादन और व्यवस्था का सम्बन्ध है वह निस्सन्देह श्लाघ्य है।

—विष्णु प्रभाकर

●

धन्वन्तरि—(गुप्त सिद्ध प्रयोगांक), सम्पादक—वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग तथा जे० पी० अग्रवाल बी० एस० सी, वार्षिक मूल्य ५≈), इस अंक का ४), प्राप्ति स्थान धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़, अलीगढ़।

धन्वन्तरि गत २१ वर्षों से आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली का प्रचार कर रहा है। अपने २२ वें वर्षारम्भ पर इसने गुप्त सिद्ध प्रयोगांक प्रकाशित किया है। जिसमें भारत के लग-भग २०० प्रसिद्ध वैद्यों ने अपने अनुभूत एवं परीक्षित सौ-सवा सौ रोगों के प्रयोग बताये हैं। आशा है कि आयुर्वैदिक चिकित्सा प्रणाली में आस्था रखने वाले तथा गृहस्थ इस विशेषांक को बहुत उपयोगी पायेंगे।

—कैलास

भारतीय क्षितिज—सितम्बर के महीने में भारतीय क्षितिज साम्प्रदायिक विद्वेष से क्षुब्ध और मलिन दिखाई देता था। किन्तु अक्टूबर के आरम्भ से ही क्षितिज निर्मल और शांत दिखाई देने लगा। प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के ओजस्वी भाषणों तथा बापू की अमृतमयी वाणी ने पाकिस्तान में अल्पमत के साथ हुए निर्दय व्यवहार के फलस्वरूप क्षुब्ध भारतीय जनता को शान्त करने में सफलता प्राप्त की। २ अक्टूबर को स्वतन्त्र भारत ने प्रथम बार बापू की जयन्ती मनाई। विदेशों में भी स्थान-स्थान पर इस युग के महामानव एवं शान्तिदूत के प्रति श्रद्धांजलियाँ भेंट की गईं।



अक्टूबर के महीने में कुछ भारतीय रियासतों की समस्या एक नये रूप में उठ खड़ी हुई जिनके प्रति भारत के जनतंत्रात्मक एवं न्यायसंगत दृष्टिकोण का परिचय संसार को मिला। काठियावाड़ की जूनागढ़ रियासत, जहाँ बहुमत हिन्दुओं का है एवं जिसका भारत से अटूट भौगोलिक सम्बन्ध है, पाकिस्तान में सम्मिलित हो गई। इससे काठियावाड़ की समस्त रियासतों को अपनी सुरक्षा की दृष्टि से बड़ा खतरा पैदा हुआ तथा जूनागढ़ रियासत का बहुमत अपने भविष्य के विषय में सशंकित हो गया। रियासत के पाकिस्तान में सम्मिलित होते ही वहाँ के अल्पमत ने बहुमत को डरा धमका कर वहाँ से खदेड़ना आरम्भ कर दिया। ऐसी दशा में भारतीय संघ को जूनागढ़ का पाकिस्तान में सम्मिलित होना कैसे मान्य हो सकता था? संघ सरकार ने इस समस्या को सुलझाने के लिए पाकिस्तान सरकार के सामने 'जनमत' लेने का प्रस्ताव रखा किन्तु उधर से कोई समुचित उत्तर नहीं मिला। उधर रियासत में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी और नवाब एवं दीवान को रियासत छोड़कर भागना पड़ा। इस अराजकता का अन्त करने के लिए दीवान को विवश हो शासनभार सम्भालने के लिए भारत सरकार से प्रार्थना करनी पड़ी। संघ सरकार ने वहां शासन भार सम्भाल लिया है और आशा है कि वहां शीघ्र ही जनता की प्रतिनिधि सरकार स्थापित हो जायगी।

इसके बाद काश्मीर की समस्या का सामना भारतीय संघ को करना पड़ा। क़बीले वालों ने पाकिस्तान की सीमा से काश्मीर पर आक्रमण कर दिया और वहाँ लूट-मार मचा दी। काश्मीर के महाराजा और वहाँ के जननेता शेख अब्दुल्ला ने भारत सरकार से सहायता की याचना की तथा भारतीय संघ में प्रविष्ट होने की इच्छा प्रकट की। भारत सरकार ने बहुत सोच समझ कर काश्मीर को लूट मार और अराजकता से बचाने के लिए सहायता देना स्वीकार कर लिया। काश्मीर को संघ में इस शर्त पर प्रविष्ट किया गया कि शान्ति स्थापित होने पर जनमत लिया जाय और उसके फलस्वरूप अन्तिम निर्णय हो। इस बात से भारतीय संघ का जनतंत्रात्मक एवं न्यायपरायण दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। हर्ष का विषय है कि भारतीय सेना के वीर सैनिकों ने समय पर सहायता पहुँचा कर काश्मीर को एक भयानक स्थिति से बचा लिया।

अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में, २७ अक्टूबर को भारत की राजधानी दिल्ली में एशियाई प्रादेशिक श्रम सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन की कार्यवाही शुरू हुई। यह सम्मेलन अपने ढंग का प्रथम एशियाई सम्मेलन है तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था के तत्वाधान में सम्पन्न हुआ है। इस सम्मेलन में अनेक एशियाई देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा एशिया के जीवन मान को ऊँचा उठाने की योजनाओं पर विचार किया। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि हमें एशिया के जीवन-मान को जो इस समय बहुत ही बुरा और नीचा है बड़े जोर शोर से ऊँचा उठाना है। इस सम्मेलन के परिणामों पर बहुत हद तक एशिया की जनता का सामाजिक न्याय तथा सुख निर्भर है। आशा करनी चाहिए कि यह सम्मेलन न केवल एशियाई राष्ट्रों का लाभ साधन करेगा वरन् सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ को भी शक्ति प्रदान करेगा।

भारत की श्रमजीवियों सम्बन्धी पंचवर्षीय योजना—भारतीय मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिए १९४६ में केन्द्रीय सरकार के श्रममंत्री माननीय जगजीवनराम ने एक पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात किया था। योजना का मुख्य उद्देश्य संपूर्ण देश के लिए समान और एकीकृत श्रमनीति निर्धारित करना है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक और औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन, उचित वेतन, काम करने की सन्तोषजनक परिस्थितियों और रहन-सहन के मान को उन्नत करने की व्यवस्था तथा शिक्षा, ट्रेनिंग और सभी लोगों को रोजगार दिलाने का आयोजन भी शामिल है। इस योजना के अन्तर्गत केवल संगठित उद्योगों में काम करने वाले मजदूर ही नहीं आते, बल्कि, कृषि, व्यापारिक संस्थाओं और असंगठित उद्योगों में काम करने वाले मजदूर भी सम्मिलित हैं इसे प्रान्तीय और रियासतों के श्रममंत्रियों तथा मालिकों और मजदूरों के प्रतिनिधियों का जोरदार समर्थन प्राप्त है।

उक्त योजना की मुख्य बातों के अन्तर्गत स्वास्थ्य सम्बन्धी बीमे की व्यवस्था, उचित वेतन, ट्रेनिंग देने के लिए अधिकाधिक सुवाधिएँ प्रदान करना, मकानों का प्रबन्ध और औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन देना है। योजना का उद्देश्य मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाले कानूनों को और अधिक व्यापक बनाना भी है ताकि कारखानों, खानों, यातायात सर्विसों में काम करने वाले अधिक से अधिक मजदूर उनसे लाभ उठा सकें।

योजना के अनुसार स्वास्थ्य बीमा योजना प्रारम्भ में केवल कार-

खानों में काम करने वाले मजदूरों तक ही सीमित होगी। इसके अन्तर्गत बीमारी के दिनों में मजदूरों को डाक्टरी और आर्थिक सहायता दी जायगी तथा मातृत्व लाभ के क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाया जायगा और दुर्घटनाओं के लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति की जायगी। इस सम्बन्ध में बहुत शीघ्र ही एक बिल पास किया जाने वाला है। योजना का खर्च मालिकों और मजदूरों तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों द्वारा दी गयी आर्थिक सहायता से चलाया जायगा और उसका शासन-प्रबन्ध एक अर्ध सरकारी कारपोरेशन के हाथों में रहेगा। सरकार का विचार मजदूरों को मुआवजे देने के वर्तमान कानून में भी संशोधन करने का है। यथासंभव अधिक से अधिक मजदूरों को मातृत्व सहायता देने के उद्देश्य से सरकार शीघ्र ही केन्द्रीय कानून लागू करने के प्रश्न पर सोचविचार कर रही है।

वेतनों के सम्बन्ध में सरकार की नीति उचित वेतन समझौतों को प्रोत्साहन देना है। न्यूनतम वेतन के सम्बन्ध में इस समय एक बिल असेम्बली के सामने पेश है। पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य सभी प्रमुख उद्योगों में वेतन और व्यावसायिक शर्तों का मान निर्धारण और महंगाई भत्ते की दरों का युक्तियुक्त संठगन है। उचित वेतन निर्धारित करने के उद्देश्य से प्रत्येक उद्योग के लिए त्रिदल औद्योगिक समितियाँ स्थापित की जा रही हैं।

मजदूरों के काम करने की परिस्थितियों में सुधार करने के लिए जो उपाय काम में लाए जा रहे हैं उनमें खानों में काम करने का ८ घंटे का दिन, वर्तमान कारखाना कानून में संशोधन, खान-कानून में संशोधन, काम करने के घंटों में विश्राम की अवधि, सवेतन छुट्टियों के नियमन के लिए कानून, और मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाले कानूनों को लागू करने के लिए उचित व्यवस्था भी सम्मिलित है।

जहाँ तक मजदूरों की भर्ती और उनके काम करने की शर्तों का सम्बन्ध है, योजना का उद्देश्य ठीका प्रणाली को यथासंभव समाप्त कर देना और सभी प्रकार के मजदूरों के लिए काम दिलाऊ सर्विसों को उपलब्ध करना है। वेतन भुगतान कानून को और अधिक व्यापक बनाने की भी कोशिश की जायगी। औद्योगिक शान्ति बनाए रखने और झगड़े निबटाने के लिए मजदूर संघों की स्थापना की जायगी और समझौता कराने की व्यवस्था की जाएगी तथा पंच नियुक्त किये जाएँगे। इसके अलावा प्रत्येक उद्योग में रोजमर्रा की कठिनाइयों दूर करने के लिए मजदूरों की संयुक्त समितियाँ भी स्थापित की जाएंगी।

हाल में भारत के माननीय श्रम मन्त्री श्री जगजीवनराम ने कहा था कि हमारा उद्देश्य खाली बातें बनाना और डींगें हांकना नहीं है। हम चाहते हैं कि मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाले हमारे कानून व्यावहारिक हों और शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से उन पर अमल करने में हमें कोई कठिनाई अनुभव न हो। इस पंचवर्षीय योजना को प्रान्तों और रियासतों का पूर्ण सहयोग और समर्थन प्राप्त है और आशा की जाती है कि अगले पांच सालों में इस पर सन्तोषजनक रूप से काम होने लगेगा।

बर्मा ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल से अलग—ब्रिटिश पार्लमेंट में २७ अक्टूबर को पेश किये गये बिल और सन्धि के अनुसार बर्मा संघ प्रजातन्त्र ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल से ६ जनवरी को अलग हो जायगा। बर्मा पहला राष्ट्र है जो ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल से अलग हो रहा है। बर्मा ब्रिटिश सम्राट् के उपनिवेशों में से नहीं होगा और उसे ब्रिटिश सुरक्षा का भी अधिकार नहीं होगा। किन्तु दोनों देशों के बीच में हुई सन्धि में भविष्य की रक्षा का प्रबन्ध और दोनों देशों में दूसरे सम्बन्धों के बारे में समझौते की व्यवस्था है।

ब्रिटेन द्वारा बर्मा को जल, थल और वायुसेना की शिक्षा दी जायगी। ब्रिटेन फौजी सामान और जहाज भी बर्मा को देगा और तीन वर्ष तक हवाई अड्डों के ख़र्च के लिए ४०,००० पौंड तक देगा।

संधि में रक्षा समझौते के अनुसार सत्ता हस्तांतरित की तारीख़ के बाद जितनी जल्दी सम्भव होगा ब्रिटेन तमाम फौजों को बर्मा से हटा लेगा इसके बदले में बर्मा ब्रिटेन से जल, थल और हवाई सेना के मिशन को बुलाने के लिए तैयार हो गया है और बर्मा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के बाहर के किसी देश से ऐसे सैनिक मिशन को नहीं बुलावेगा। ब्रिटेन बर्मा को हथियार खरीदने में हर प्रकार की सहायता देगा। रक्षा के सम्बन्ध में समझौता ३ वर्ष तक चालू रहेगा और उसके बाद एक वर्ष का नोटिस देकर कोई भी देश उसे तोड़ सकता है।

भारत और हिन्देशिया—भारत और हिन्देशिया का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। हिन्देशिया में आज के दिन भी ऐसे अनेक स्मारक हैं जो हमारे अतीत के सम्पर्क का स्मरण दिलाते हैं। सदियों का विदेशी राज्य भी हमारे इस सम्पर्क की परम्परा को लुप्त नहीं कर सका। हिन्देशिया में विदेशी राज्य के जुए को उतार फेंकने के लिए चलाये गये स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति भारत की सदा सहानुभूति रही है। भारत में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने के फलस्वरूप पंडित नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने भी अपनी दिलचस्पी उधर दिखाई है।

दोनों देशों के बीच इन पुराने सम्बन्धों को और दृढ़ करने के लिए भारतीय रेडियो ने हिन्देशिया के लिए विशेष रूप से समाचार प्रसार करने की व्यवस्था की है। जैसा कि सूचना मंत्री सरदार पटेल ने उद्घाटन के समय कहा, इसके द्वारा दोनों देश और निकट आ जायँगे।

भारत और पराधीन देश—राष्ट्रीय सरकार के स्थापित होते ही पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि भारत की विदेश नीति का लक्ष्य संसार के पराधीन देशों की स्वाधीनता प्राप्ति के अनुकूल रहेगा। हिन्देशिया और वीटनाम की प्रजातंत्र सरकारों के प्रति जो दृष्टिकोण भारत ने रखा है उसका आधार भी वही लक्ष्य है।

लेक सक्सेस में चल रही संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक में भी भारत ने अपना यही दृष्टिकोण रखा है। संघ की संरक्षण समिति में भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने यह प्रस्ताव रखा कि जनरल असेम्बली एक विशेष समिति बनाये जो असेम्बली की प्रत्येक बैठक के तीन सप्ताह पूर्व बैठकर उस सूचना की जांच करे जो कि उपनिवेशों की अधिकारी शक्तियां अपने द्वारा शासित प्रदेशों के बारे में दें। इस प्रस्ताव का ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, और नीदरलैंडस् आदि समस्त शासक देशों ने विरोध किया और कहा कि यह तो संघ के चार्टर की शर्तों से

बाहर है। किन्तु भारत ने सोवियत रूस के सहयोग से इस प्रस्ताव पर विजय प्राप्त की।

इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के आदेश प्राप्त प्रदेश के विषय में भारत ने संरक्षण समिति में यह प्रस्ताव रखा कि दक्षिणी अफ्रीका इस आदेश प्राप्त प्रदेश को संयुक्त राष्ट्रीय संरक्षण के अन्तर्गत रखने के लिए अपना एक समझौता जनरल असेम्बली के आगामी अधिवेशन तक प्रस्तुत करे। इस प्रस्ताव पर भी भारत की शानदार विजय हुई और यह प्रस्ताव समिति में बहुमत द्वारा स्वीकृत हुआ। यह प्रस्ताव डेनमार्क के एक संशोधन सहित जनरल असेम्बली की बैठक में भी बहुमत से पास होगया।

फ़िलस्तीन की समस्या और भारत—फ़िलस्तीन की समस्या गम्भीर होती जा रही है। ब्रिटेन, अमेरिका और रूस तीनों बड़े राष्ट्र इस पक्ष में हैं कि फ़िलस्तीन का बंटवारा किया जाय और यहूदियों को वहाँ बसाया जाय। मध्यपूर्व के राष्ट्रों में बड़ी बेचैनी फैल रही है। विभाजन को रोकने के लिए अरब लड़ने को तैयार हो रहे हैं। उधर यहूदी भी संघर्ष के लिए उद्यत है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की बैठक में फ़िलस्तीन की समस्या पेश हुई तो भारत का दृष्टिकोण श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने प्रस्तुत किया। आपने कहा कि फ़िलस्तीन की समस्या पर विचार करते हुए जो हम यहूदियों को बसाने की बात सोचते हैं वह बड़ी भूल है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यूरोप से निर्वासित यहूदियों को बसाने की समस्या गम्भीर है और उसका हल हमें ढूंढना चाहिये। लेकिन फ़िलस्तीन के साथ इस समस्या को सम्बद्ध करना ग़लत होगा। फ़िलस्तीन मूलतः एक अरब राज्य है। उसका विभाजन करना अरबों के प्रति अन्याय होगा किन्तु जिन प्रदेशों में यहूदियों का बहुमत है वहाँ उनको पर्याप्त अधिकार मिलने चाहिए। फ़िलस्तीन की मूल समस्या है उसकी गुलामी। अतः फ़िलस्तीन को तुरन्त स्वतन्त्र कर देना चाहिए।

इसका यह मतलब नहीं कि हमें यहूदियों से सहानुभूति नहीं। भारत उन थोड़े से देशों में हैं जहाँ कि यहूदी जाति निरन्तर २००० वर्ष से भी अधिक काल से बिना किसी धार्मिक भेदभाव अथवा अत्याचार के रह रही है। यूरोप से निर्वासित यहूदियों को अपने यहाँ बसाने के लिए संयुक्त राष्ट्रों को आगे बढ़ना चाहिए। जो देश बिना किसी कठिनाई के उनको बसा सकते हैं तथा उनकी रक्षा कर सकते हैं उनको अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करनी चाहिए और संयुक्त राष्ट्र संघ को इस में योग देना चाहिए।

जैसा कि श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने कहा कि फ़िलस्तीन समस्या का इसके अतिरिक्त और कोई हल ख़तरे से खाली नहीं। उसमें भयानक संघर्ष की सम्भावना है।

स्वर्गीय श्री कामता प्रसाद गुरु—अत्यन्त खेद का विषय है कि हिन्दी-जगत् के विख्यात विद्वान् श्री कामता प्रसाद गुरु का पिछले दिनों देहावसान हो गया। गुरु जी ने 'सरस्वती' और 'बालसखा' का सम्पादन किया था। इसके अतिरिक्त आपने सत्यप्रेम, भौमासुर वध पद्य पुष्पावली, भाषावाक्य पृथक्करण हिन्दी ग्रन्थों की रचना की है। गुरु जी ने हिन्दी भाषा का प्रामाणिक व्याकरण लिख कर हिन्दी भाषा का बहुत बड़ा उपकार किया है। इस व्याकरण से उनकी विद्वत्ता, बहुश्रुतता और सूक्ष्म विवेचना की शक्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अबतक लिखे गये हिन्दी के व्याकरणों में यह सब से सरल सबसे अधिक विशद और सबसे अधिक विद्वत्तापूर्ण है। यही कारण है कि यह पुस्तक बहुत अधिक लोकप्रिय हुई है। भारत धर्म महामंडल ने आपको व्याकरण रत्न की उपाधि से विभूषित किया था।

गुरु जी का निधन हिन्दी जगत् की एक बहुत भारी क्षति है। हम उनकी सद्गति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और उनके पारिवारिक जनों के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

स्वर्गीय श्री रामेश्वर 'करुण'—गत २७ नवम्बर को ४७ वर्ष की अवस्था में श्री रामेश्वर 'करुण' के निधन से हिन्दी साहित्याकाश का एक देदीप्यमान नक्षत्र अस्त हो गया। श्री करुण जी का स्थान हिन्दी-जगत् में अद्वितीय है। एक दरिद्र किसान परिवार में जन्म लेकर निरन्तर कठिनाइयों और अभावों का सामना करते हुए उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और आजीवन पीड़ित मानवता के उद्धार के लिये लड़ते रहे। उन्होंने 'करुण सतसई' लिखकर हिन्दी जगत् में सबसे पहले सर्वहारा वर्ग की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और भावी पीढ़ी को राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक चेतना प्रदान की। इस दिशा में करुण-सतसई सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ उल्लेखनीय कविता-ग्रंथ है। इसी प्रकार की उनकी दूसरी पुस्तक 'तमसा' भी है। किसान और मजदूरों के बाद उनकी चिन्ता का विषय हमारा बालक वर्ग था। करुण जी ने हिन्दी भाषा को बाल-साहित्य के रूप में जितना स्वस्थ, सरल और मनोरंजक साहित्य दिया है उसकी तुलना नहीं हो सकती। बाल-गोपाल, वीर गाथा, चिनगारी, ईसप-नीति-निकुंज आदि पुस्तकें इसका प्रमाण हैं। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये महान् आर्थिक कठिनाइयों की उपेक्षा करते हुए और अपने स्वास्थ्य को नष्ट करके उन्होंने वर्षों 'शिक्षा' मासिक का संपादन और संचालन किया। शिक्षा द्वारा उन्होंने बाल-साहित्य की सृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है।

इसके अतिरिक्त व्यङ्ग और हास्य की रचना में भी वे अद्वितीय थे। विभिन्न नामों से उनकी रचनाएँ पत्रों में प्रकाशित होती थीं। राजनीतिक व्यङ्ग में तो वे अत्यन्त निपुण थे।

शिक्षा के विषय में भी उनका दृष्टिकोण बहुत ही वैज्ञानिक था। वस्तुतः वे जनताके थे और जनता के लिये उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। उनके हृदय में भारत को स्वाधीन देखने की प्रबल अभिलाषा थी। वे भारत को एक स्वाधीन, महान्, समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे और आजीवन इसी के लिये प्रयत्न करते रहे।

उनके निधन से वस्तुतः हिन्दी-जगत् को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। 'आजकल' परिवार ईश्वर से उनकी सद्गति की प्रार्थना करता है और उनकी पत्नी एवं आत्मीय जनों से अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करता है। × ×

★

आज का काश्मीर

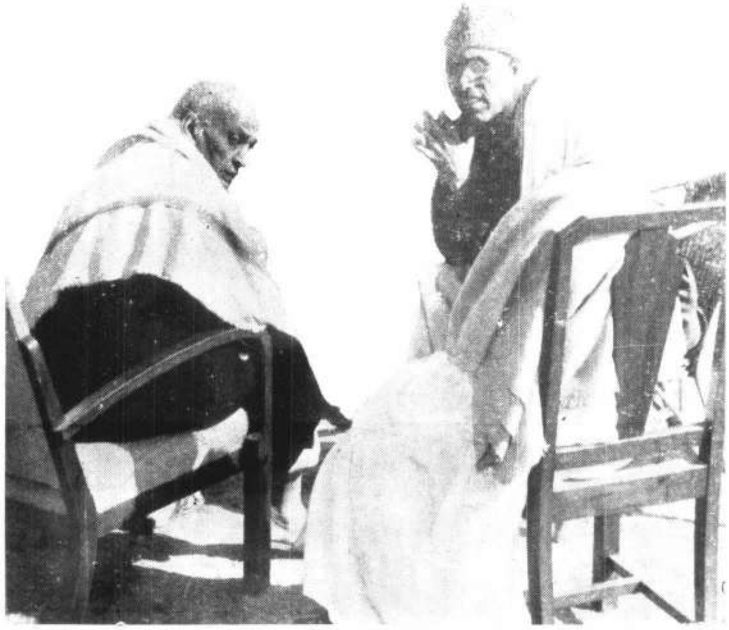
विदेशी आक्रमण से काश्मीर की रक्षा करने का कार्य भारत सरकार ने अपने हाथोंमे ले लिया है। सरहदी आक्रमण कारियों को मुँह तोड़ उत्तर देने वाले भारतीय सैनिक हवाई जहाजों से उतर रहे हैं। →



पं० नेहरू की ओजस्वी वाणी ने काश्मीरी जनता में नई स्फूर्ति पैदा करदी ↙



↘ काश्मीर की स्थिति पर बातें करते हुए सरदार पटेल और शेख अब्दुल्ला

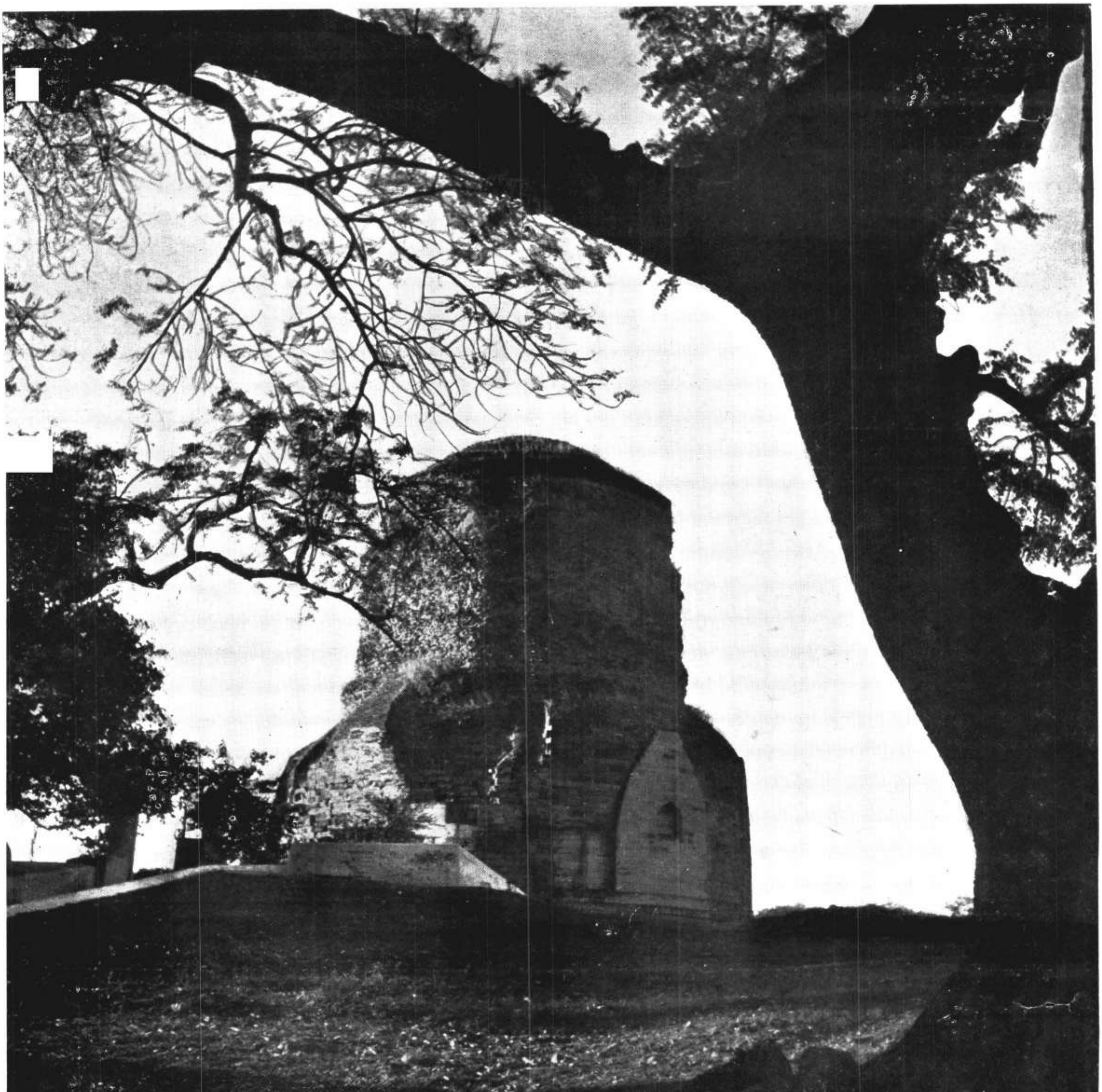


काश्मीर की रक्षा करनेवाले सैनिकों के साथ भारत के रक्षा मंत्री सरदार बलदेवसिंह



काश्मीर की घाटी में हवाई जहाज़ से उतरे हुए कुछ भारतीय सैनिक





सारनाथ (काशी) का प्राचीन स्तूप

Regd. No. L. 5104

Printed by the United Press for United Publications, P. B. 166 Delhi.